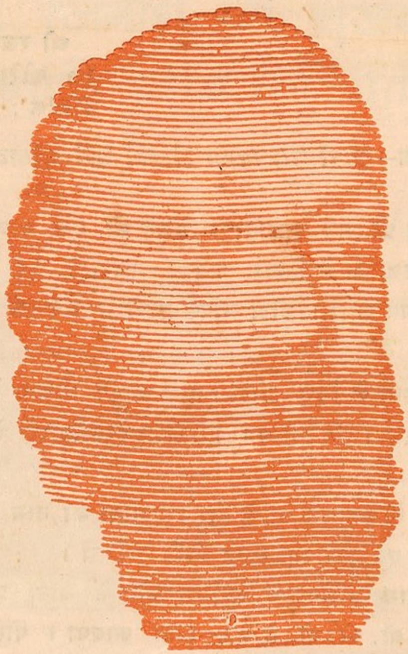

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युक्रांद

जुलाई १९७४ ★ मूल्य : १.२५ रु०

श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क, पूना-१
दिनांक : २५-६-१९७४

विषय—*नये प्रकाशन भेजने की योजना।*

प्रिय मित्र,

हमने नये प्रकाशन डाक द्वारा भेजने की एक योजना तैयार की है, जो भगवान श्री रजनीश के हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती एवं मराठी भाषा में प्रसिद्ध होते प्रकाशन शीघ्रातिशीघ्र आपके हाथों में घर बैठे पहुंच जाय; इस प्रकार की है।

इस व्यवस्था के लिए आपका नाम प्रस्तुत योजना में शामिल कराने के लिए कृपया आपका विनती पत्र निम्नोक्त स्पष्टीकरण के साथ हमें भेज देने का कष्ट करें :

(१) जिस भाषा में प्रकाशन चाहते हों, उस भाषा का नाम।

(२) अपना नाम एवं पूरा पता स्पष्ट लिपि में लिखें।

आपका नाम योजना में शामिल होने के बाद, प्रकाशन आपको मुद्रित मूल्य में ही वी. पी. पी. से भेज दिया जायगा। पोस्टेज और पेकिंग चार्ज नहीं लिया जायगा।

यह योजना सिर्फ भारत के लिए ही सीमित होगी।

'समाधि साधना शिविर' के दरमियान आवास और भोजन की व्यवस्था

यह प्रदर्शित करते हुए हमें आनन्द होता है कि शिविर में शामिल होने वाले साधकों के लिए आहार एवं आवास की आवश्यक व्यवस्था की गई है। यह स्थल श्री रजनीश आश्रम से बिल्कुल नजदीक है।

साधना के दस दिन दरमियान भोजन और आवास की सुविधा के लिए रु. १२५-०० खर्च होंगे। शिविरार्थी को सोने-बैठने के लिए बिछौना अपने साथ लाना होगा।

जो साधक शिविर में शामिल होना चाहते हों उनको उपरोक्त पते पर प्रवेश शुल्क के रु. १००-०० उपरान्त भोजन एवं आवास की सुविधा के लिए रु. १२५-०० अर्थात् दोनों मिलाकर रु. २२५-०० भेज देने की विनती है।

मा योग लक्ष्मी
सेक्रेटरी
श्री रजनीश आश्रम

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युक्रांद

वर्ष – ६

अंक – १

मूल्य एक प्रति : १-२५ रु.

" वार्षिक : १५-०० रु.

जुलाई १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार
○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
○ 'आकुल' राजेन्द्र
(साधु आनन्द 'आकुल')
○ आलोक पाण्डे

☐ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

एक्रान्ट

जुलाई ७४

★

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ३ : चिन्मय-घर
(भगवान श्री की बोध-कथाओं से)

: ५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, दसवां प्रवचन)

: ३७ : स्वयं होना ही प्रकृति के अनुकूल होना है
(लाओत्से पर वार्त्ता से)
संकलन : स्वामी आनन्द मैत्रेय, पूना

गीत : काव्य

: ४ : समर्पण
सुमन सरीन

: ३६ : एक और आत्म कथ्य
स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७६०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

बोध कथाएं

चिन्मय घर

मृण्मय घरों को ही बनाने में जीवन को व्यय मत करो। उस चिन्मय घर का भी स्मरण करो जिसे कि पीछे छोड़ आये हो और जहां कि आगे भी जाना है। उसका स्मरण आते ही ये घर फिर घर नहीं रह जाते हैं।

'नदी की रेत में कुछ बच्चे खेल रहे थे। उन्होंने रेत के मकान बनाये थे। और प्रत्येक कह रहा था : 'यह मेरा है, और सबसे श्रेष्ठ है। इसे कोई दूसरा नहीं पा सकता है।' ऐसे वे खेलते रहे और जब किसी ने किसी के महल को तोड़ दिया तो लड़े-झगड़े भी। फिर सांझ का अन्धेरा घिर आया। उन्हें घर लौटने का स्मरण हुआ। महल जहां थे, वहीं पड़े रह गये, और फिर उनमें उनका 'मेरा' और 'तेरा' भी न रहा।

यह प्रबोध प्रसंग कहीं पढ़ा था। मैंने कहा : 'यह छोटा-सा प्रसंग कितना सत्य है! और क्या हम सब भी रेत पर महल बनाते बच्चों की भांति ही नहीं हैं? और कितने कम ऐसे लोग हैं जिन्हें सूर्य को डूबते देख कर घर लौटने का स्मरण आता हो! और क्या अधिक लोग रेत के घरों में 'मेरा' 'तेरा' का भाव लिये ही जगत् से विदा नहीं हो जाते हैं!'

स्मरण रखना कि प्रौढ़ता का उम्र से कोई सम्बन्ध नहीं। मिट्टी के घरों में जिसकी आस्था न रही, उसे ही मैं प्रौढ़ कहता हूं। शेष सब तो रेत के घरों से खेलते बच्चे ही हैं!

समर्पण

ओ सम्पूर्ण !
तुम्हें सारा समर्पण ।

यह पलायन नहीं प्रार्थना है,
जो की नहीं जाती, जिसमें मैं हुई जाती हूं ।

थकी-थकी तन्द्रा को सुला लूं
तभी तो अन्तःचैतन्य में निःशब्द मेरी प्रार्थना
अनूदित होगी तुममें, मुझसे ।

इसे गहरा जाने दो,
ताकि वरण कर प्रेम की मृत्यु उसमें
अपने को खोकर
मैं तुझे पाकर, मृत्यु के पार पहुंचूं ।

बनने दो मेरी प्रार्थना को आकारहीन,
सीमाहीन...
जरा खाली कर लूं अपने को
कि तुम अपना आनन्द मुझमें भर दो ।

कोई अंश न छूटे तेरा-मेरा
हम गागर-सागर से अंश और अंशी
एक "मैं" बन जाएं ।

□ *सुमन सरीन*

कृष्ण और गीता

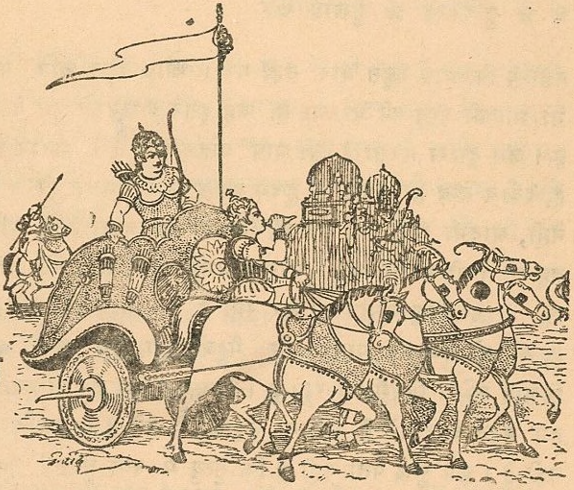

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक १० वां, श्लोक ४९ से ४८ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

गीता के ये प्रवचन अनवरत पिछले माहों के 'युक्रांद' के अंकों में हमने संजोए हैं, उसी क्रम श्रृङ्खला में प्रस्तुत है यह १०वां प्रवचन। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है—भगवान कृष्ण के विकराल स्वरूप में अर्जुन देवताओं को कंपित होते हुए देखता है। अन्यों को मृत्यु की ओर जाते हुए देखता है। लेकिन क्या उसने अपने आपको इस विकराल रूप में नहीं देखा, मृत्यु के मुंह में जाते नहीं देखा? और अगर अपने आपको भी देखा तो उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया, और अगर नहीं देखा तो क्यों?

यह प्रश्न कीमती है। और बहुत सोचने योग्य। कोई भी व्यक्ति अपनी मृत्यु नहीं देख सकता। मृत्यु सदा दूसरे की ही देखी जा सकती है। क्योंकि मृत्यु बाहर घटित होती है, भीतर तो घटित होती ही नहीं।

समझें; आपने जब भी मृत्यु देखी है तो किसी और की देखी है। आपकी मृत्यु की जो धारणा है, वह दूसरों को मरते देखकर बनी है। ऐसा

नहीं है कि आप बहुत बार नहीं मरे। आप बहुत बार मरे हैं। लेकिन जो भी आपकी मृत्यु की धारणा है, वह दूसरे को मरते हुए देखकर आपने बनाई है। जब दूसरा मरता है, तो आप बाहर होते हैं। शरीर निस्पन्द हो जाता है, श्वास बन्द हो जाती है, हृदय की धड़कन समाप्त हो जाती है, खून चलता नहीं, आदमी बोल नहीं सकता, निष्प्राण हो जाता है। लेकिन भीतर जो था वह तो कभी मरता नहीं। और आदमी अपनी मौत कैसे देख सकता है !

इसलिए भीतर जो मर रहा है, वह नहीं देख सकता कि मैं मर रहा हूं, वह तो अब भी पाएगा कि मैं जी रहा हूं। अगर होश में है तो उसे दिखाई पड़ेगा कि मैं जी रहा हूं। अगर बेहोश है तो ख्याल में नहीं रहेगा। हम बहुत बार मरे हैं, लेकिन बेहोशी में मरे हैं। इसलिए हमें कोई ख्याल नहीं है। हमें कुछ पता नहीं है कि मृत्यु में क्या घटा ! अगर एक बार भी हम होश में मर जाएं तो हम अमृत हो गए। क्योंकि तब हम जान लेंगे कि बाहर ही सब मरता है। जो मेरा समझा था वह टूट गया, बिखर गया, शरीर नष्ट हो गया। लेकिन मैं, मैं अब भी हूं।

कोई व्यक्ति ने कभी स्वयं की मृत्यु का अनुभव नहीं किया है। जो लोग बेहोश मरते हैं उन्हें तो पता ही नहीं चलता कि क्या हुआ। जो लोग होश से मरते हैं उन्हें पता चलता है कि मैं जीवित हूं। जो मरा वह शरीर था मैं नहीं हूं। इसलिए ऐसा सोचें और तरह से। अगर आप कल्पना भी करें अपने मरने की तो कल्पना भी नहीं कर सकते। अनुभव को छोड़ दें। कल्पना तो झूठ की भी हो सकती है। और आपने सुना होगा कल्पना तो किसी भी चीज की हो सकती है, कल्पना ही है। लेकिन आप अपने मरने की कल्पना करें तब आपको पता चलेगा। वह नहीं हो सकती। आप कुछ भी उपाय करें अपने शरीर को मरा हुआ देख लेंगे लेकिन आप देखने वाले बाहर जिन्दा खड़े रहेंगे। कल्पना में भी नहीं मर सकते। क्योंकि वह जो सोच रहा है, वह जो देख रहा है, कल्पना जिसे दिखाई पड़ रही है, वह साक्षी बना हुआ जिन्दा रहेगा। असली में तो मरना मुश्किल है, कल्पना में भी मरना मुश्किल है। लोग कहते हैं कल्पना असीम है, कल्पना असीम नहीं है। आप मृत्यु की कल्पना करें, आपको पता चल जाएगा, कल्पना की भी सीमा है।

इसलिए अर्जुन सबको तो देखता है मृत्यु के मुंह में जाते, स्वयं को नहीं देखता। स्वयं को कोई भी नहीं देख सकता। अगर अर्जुन स्वयं को भी

मृत्यु में जाते देखे तो देखेगा कौन, फिर जो मृत्यु में जा रहा है वह अलग हो जाएगा और जो देख रहा है वह अलग हो जाएगा। अगर अर्जुन देख रहा है मृत्यु में जाते तो अर्जुन का शरीर भले ही चला जाय मृत्यु में, अर्जुन नहीं जा सकता, वह बाहर खड़ा रहेगा। वह देखने वाला है। वह जो आत्मा है उसे हमने इसलिए दृष्टा कहा है। वह सब देखता है। वह मृत्यु को भी देख लेता है।

इसलिए अर्जुन को ख्याल नहीं आया। आने का कोई उपाय भी नहीं है। वह बाहर है, वह देखने वाला है। और सब मर रहे हैं, मित्र भी, शत्रु भी, बड़े-बड़े योद्धा। लेकिन अर्जुन को ख्याल भी नहीं आ रहा कि मैं मर रहा हूं, या मैं मर जाऊंगा।

इसलिए बड़े मजे की बात है आप रोज लोगों को मरते देखते हैं। आपको भय भी पकड़ता है। लेकिन आप विचार करें, कभी भीतर यह बात मजबूती से नहीं बैठती है कि मैं मर जाऊंगा। ऊपर-ऊपर कितना ही भयभीत हो जाएं कि मरना पड़ेगा, लेकिन भीतर यह बात घुसती नहीं कि मैं मर जाऊंगा। भीतर यह भरोसा बना ही रहता है कि और लोग ही मरेंगे, मैं नहीं मरूंगा। यह भरोसा प्रतिफलन है, उस गहरे आंतरिक केन्द्र का जहां मृत्यु कभी प्रवेश नहीं करती। उसके बाहर-बाहर ही मृत्यु घटित होती है। आपका घर आपसे छीना जाता है बहुत बार। आपके वस्त्र आपसे छीने जाते हैं बहुत बार। जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं, नए वस्त्र मिल जाते हैं। लेकिन आप, आप कभी भी नष्ट नहीं होते।

इसलिए अपनी मृत्यु की कल्पना असम्भव है। अपनी मृत्यु का दर्शन भी असम्भव है। और जो अपनी मृत्यु का दर्शन करने की कोशिश कर लेता है, वह अमृत का अनुभव कर लेता है।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं अपनी मृत्यु का अनुभव करने की कोशिश है। सब प्रक्रियाएं योग की सारी चेष्टा इस बात की है कि आप होशपूर्वक अपने को मरता हुआ देख लें। क्या होगा ? सब मर जाएगा आप बच जाएंगे।

रमन को ऐसा हुआ कि उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु आ रही है। वे बीमार हैं, उनकी मृत्यु आ रही है। और जब मृत्यु आ ही रही है तो उससे

लड़ना क्या, हाथ पैर ढीले छोड़कर वे लेट गए। उन्होंने कहा ठीक है, जब मृत्यु आ रही है तो आ जाय, मैं मृत्यु को भी देख लूं कि मृत्यु क्या है! सब शरीर ठंडा हो गया। ऐसा लगने लगा कि शरीर अलग हो गया। लेकिन सब शरीर मरा हुआ मालूम पड़ रहा है फिर भी रमण को लग रहा है मैं तो जिन्दा हूं! वही अनुभव उनके जीवन में क्रांति बन गया। उसके पहले वह रमन थे, उसके बाद वे भगवान हो गए। उसके पहले तक उन्होंने जाना था कि मैं यह शरीर हूं जो मरेगा, इसके बाद उन्होंने जाना कि यह शरीर मैं नहीं हूं, जो नहीं मरेगा वह मैं हूं। सारा तादाम्य बदल गया, सारी दृष्टि बदल गयी। एक नये जन्म की, अमृत, एक नए जीवन की शुरुआत हो गई।

योग की सारी प्रक्रियाएं आपको स्वेच्छा से मरने की कला सिखाने की हैं। पुराने शास्त्रों में कहा है—आचार्य, गुरु—मृत्यु है। क्योंकि जिस गुरु के पास आपको मृत्यु का अनुभव न हो पाए, वह गुरु ही क्या। लेकिन मृत्यु का अनुभव बड़ा विरोधाभासी है। एक तरफ जो भी आपने अपने को समझा था—नाम, धाम, पता-ठिकाना, शरीर—सब मर जाता है। और जो आपने कभी नहीं सोचा था आपके भीतर एक ऐसे केन्द्र का आविर्भाव हो जाता है, जिसकी मृत्यु का कोई उपाय नहीं, जो अमृत है।

अर्जुन को इसलिए अनुभव नहीं हुआ। और उसको भी तभी तक मृत्यु का भय है, जब तक आपने अनुभव नहीं किया है। आपके भीतर क्या मरणधर्मा है और क्या अमृत है, इसका भेद ही ज्ञान है। आपके भीतर क्या-क्या मर जाने वाला है और क्या-क्या नहीं मरने वाला है, इसकी भेद-रेखा को खींच लेना ही ज्ञान है। समाधि में वही भेद-रेखा खिंच जाती है। आप दो हिस्सों में साफ हो जाते हैं।

एक आपकी खोल है, जो मरेगी, क्योंकि वह जन्मी है, जो जन्मा है वह मरेगा। और एक आपके भीतर की गिरी है जो नहीं मरेगी क्योंकि वह जन्मी भी नहीं है। शरीर का जन्म है, आपका कोई जन्म नहीं। शरीर का जन्म है, शरीर की मृत्यु है। जो आपको मां-बाप से मिला है शरीर वह मरेगा। लेकिन जो आप हैं, उसके मरने का कोई उपाय नहीं, लेकिन ऐसा विश्वास करके मत बैठे रहना। विश्वास करने की हमारी बड़ी जल्दी होती है। और मतलब की बात हो, इच्छा के अनुकूल हो—हम जल्दी विश्वास कर लेते हैं। हम सब चाहते हैं कि न मरें। इसलिए आत्मा अमर है इसमें

विश्वास करने के लिए हमें बहुत तर्क की जरूरत नहीं पड़ती। हमारा धैर्य काफी तर्क हो जाता है। कोई भी हमसे कहे आत्मा अमर है, हमारा दिल बड़ा खुश होता है कि चलो मरेंगे नहीं। इस पर विश्वास कर लेने में जल्दी कर लेते हैं लोग। जल्दी मत करना, विश्वास से कुछ हल न होगा। अनुभव ही एकमात्र हल है। मैं कहता हूं इससे मान मत लेना। कृष्ण कहते हैं इससे मत मान लेना। बुद्ध कहते हैं इससे मत मान लेना। उनके कहने से सिर्फ प्रयोग करने के लिए तैयार होना है, मान मत लेना। इतना ही समझना कि कहते हैं ये लोग—प्रयोग करके हम भी देख लें। और अगर अनुभव मिल जाय तो ही मानना अन्यथा मत मानना। नहीं तो हमारी हालत ऐसी है कि बिना अनुभव के हम माने चले जाते हैं। बिना अनुभव के जो मान्यता है वह ऊपर-ऊपर होगी, थोथी होगी। जरा सी वर्षा होगी और बह जाएगी, टिकने वाली नहीं है। ऊपर-ऊपर की जो मान्यता है वह मृत्यु में आपको सजग न रख पाएगी, आप बेहोश हो जाएंगे।

डाक्टर तो अब एनस्थेसिया का प्रयोग करते हैं, बड़ा आपरेशन करना हो तो। लेकिन मृत्यु सबसे बड़ा आपरेशन है। क्योंकि आपका समस्त शरीर संस्थान आपसे अलग किया जाता है। इसलिए प्रकृति भी उसे होश में नहीं कर सकती। प्रकृति भी आपको बेहोश कर देती है, मरने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। वह इतना बड़ा आपरेशन है, उससे बड़ा कोई आपरेशन नहीं है। कोई डाक्टर एक हड्डी अलग करता है, कोई डाक्टर दो हड्डी अलग करता है। कोई हृदय को बदलता है। लेकिन पूरा संस्थान, आपका पूरा शरीर, मृत्यु अलग करती है आपसे। वह गहरे से गहरी सर्जरी है। उसमें आपका बेहोश कर देना एकदम जरूरी है।

इसलिए मौत के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। अगर मौत में होश रख पाएं तो आपको पता चल जाएगा कि आपकी ये कोई मृत्यु नहीं है।

ध्यान जो साधता है, वह धीरे-धीरे मौत में भी होश रख पाता है; क्योंकि मरने के पहले बहुत बार वह अपने को शरीर से अलग करके देख लेता है। कठिन नहीं है। अगर प्रयोग करें तो सरल है। अगर मानते ही रहें तो बहुत कठिन है। अगर प्रयोग करें तो बहुत सरल है, क्योंकि आप अलग हैं ही। सिर्फ थोड़े से होश को बढ़ाने की जरूरत है भीतर। आंख बंद करके भीतर देखने की क्षमता विकसित करने की जरूरत है। लेकिन मौत

तो बहुत दूर है; आप अपनी नींद को भी नहीं देख पाते तो मौत को कैसे देख पाएंगे ! आप रोज सोते हैं सांझ। जिन्दगी में साठ साल जियेंगे, तो बीस साल सोने में बितायेंगे। छोटा-मोटा काम नहीं है नींद। एक तिहाई जिन्दगी उसमें जाती हैं। बीस साल आप सोते हैं, अगर साठ साल जिन्दा रहते हैं।

लेकिन आपको पता है कि नींद क्या है ? कभी आपने होशपूर्वक नींद को देखा है कि नींद उतर रही मेरे ऊपर, छा रही, सब तरफ से मुझे घेर रही, शरीर सुस्त हुआ जा रहा, नींद प्रवेश करती जा रही और मैं देख रहा हूं। आप नींद को भी नहीं देख पाते तो मौत को कैसे देखियेगा ? मौत तो बहुत गहरी मूर्च्छा है। नींद तो बहुत छोटी मूर्च्छा है। जरा-सा बर्तन गिर जाता है तो खुल जाती है, इससे ज्यादा गहराई नहीं है। एक मच्छर काट जाय तो खुल जाती है, बहुत गहरी नहीं है। लेकिन इतनी उथली चीज में भी आप होश नहीं रख पाते, तो मौत में कैसे रख पाएंगे ?

प्रयोग अगर करेंगे तो जिसको भी मृत्यु के सम्बन्ध में जागना है उसे नींद से प्रयोग शुरू करना चाहिए। रात जब बिस्तर पर पड़ेंगे तो आंख बन्द करके एक ही ख्याल रखें कि मैं जागा हूं। शरीर को ढीला होने दें, होश को सजग रखें। और ख्याल रखें कि मैं देख लूं, नींद कब आती है। कब मेरा शरीर जागने से नींद में प्रवेश करता है, कब गेयर बदलता है, कब मैं नींद की दुनिया में प्रवेश करता हूं—उसे देखूं। बस चुपचाप देखते रहें। पता नहीं चलेगा कब नींद लग गई और देखने का ख्याल भूल जाएगा। सुबह होश आएगा कि देखने की कोशिश की थी, लेकिन देख नहीं पाए, नींद आ गई और देखना खो गया। लेकिन सतत लगे रहें। अगर तीन महीने निरंतर बिना किसी विघ्न-बाधा के आप नींद के साथ जागने की कोशिश करते रहें, तो किसी भी दिन यह घटना घट जाएगी कि नींद उतरेगी आपके ऊपर, जैसे सांझ उतरती है—अन्धेरा छा जाता है और आप भीतर जागे रहेंगे। आप देख पाएंगे कि नींद यह है।

जिस दिन आपने नींद देख ली उस दिन आपने बहुत बड़ा कदम उठा लिया, बहुत बड़ा कदम उठा लिया। फिर दूसरा प्रयोग है कि नींद रात लगी रहे, लगी रहे, लगी रहे, लेकिन भीतर एक कोने में होश भी बना रहे कि मैं सो रहा हूं, करवट बदल रहा हूं, मच्छर काट रहा है, हाथ-पैर ढीले पड़

गये हैं, अब जागने का क्षण करीब आ रहा है, अब मैं जग रहा हूं। जिस दिन आप सांझ से लेकर सुबह तक, शरीर सोया रहे और आप जागे रहें, अब कोई कठिनाई नहीं—अब आप मृत्यु में प्रवेश कर सकते हैं। तब बहुत आसान है।

तीसरी बात, इतना अगर सध जाय, इसमें वर्षों लग सकते हैं। लेकिन इतना सध जाय तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे, एक नये आदमी हो जाएंगे। आपने अपनी नींद पर विजय पा ली। और जिसने अपनी नींद पर विजय पा ली, उसको मृत्यु पर विजय पाने में कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि मृत्यु एक और बड़ी नींद है, और गहन मूर्च्छा है। अगर आप नींद में जग पाते हैं, तो आपको तत्क्षण पता चलने लगेगा कि आप अलग हैं और शरीर अलग है, क्योंकि शरीर सोएगा और आप जागेंगे।

ध्यान रहे, आपको तब तक शरीर के और आत्मा के अलग होने का पता नहीं चलेगा जब तक आप कोई ऐसा प्रयोग न करें, जिस प्रयोग में दोनों की क्रियायें अलग हों। अभी आपको भूख लगती है, तो आपके शरीर को भी लगती है, आपको भी लगती है। बहुत मुश्किल है तय करना कि शरीर को भूख लगी कि आपको लगी। अभी आप जो भी कर रहे हैं उसमें आपकी क्रियाओं में तालमेल है, शरीर और आप में तालमेल है। आपको कोई न कोई ऐसा अभ्यास करना पड़े, जिसमें आपको कुछ और हो रहा है, शरीर को कुछ और हो रहा है; बल्कि शरीर को विपरीत हो रहा है, आपको विपरीत हो रहा है।

लोगों ने भूख के साथ भी प्रयोग किया है। उपवास वही है। वह इस बात का प्रयोग है कि शरीर को भूख लगेगी और मैं स्वयं को भूख न लगने दूंगा। भूखे मरने का नाम उपवास नहीं है। अधिक लोग उपवास करते हैं, वे सिर्फ भूखे मरते हैं। क्योंकि शरीर को भी लगती है भूख, उनको भी लगती है। बल्कि सच तो यह है कि भोजन करने में उनकी आत्मा को जितनी भूख का पता नहीं चला था, उतना उपवास में पता चलता है। भोजन करने में तो पता चलता नहीं, जरूरत के पहले ही शरीर को भोजन मिल जाता है। भूख भीतर तक प्रवेश नहीं करती। उपवास कर लिया, उस दिन, दिन भर भूख लगी रहती है। खाते वक्त तो दो दफे लगती होगी। दिन में, तीन दफा लगती होगी; न खाएं तो दिन भर लगती है, भूख पीछा

करती है। शरीर तो भूखा होता ही है, आत्मा भी भीतर भूख से भर जाती है। उपवास का प्रयोग इसी तरह का प्रयोग है, जैसा नींद का प्रयोग है। शरीर को भूख लगे और आप भीतर बिना भूख के रहें, तो दोनों क्रियाएं अलग हो जाएंगी।

जिस दिन आपको साफ हो जाएगा शरीर को भूख लगी और मैं तृप्त भीतर खड़ा हूं, कोई भूख नहीं, उस दिन आपको भेद का पता चल जाएगा। शरीर सो गया, आप जागे हुए हैं, भेद का पता चल जाएगा। और जब भेद का पता चलेगा तभी, जब मृत्यु होगी, शरीर मरेगा, आप नहीं मरेंगे। तब आपको उस भेद का भी पता चल जाएगा। नींद से शुरू करें धीरे-धीरे, धीरे-धीरे भीतर भेद साफ होने लगता है, रोशनी भीतर बढ़ने लगती है। रोशनी हमारे पास है, हम उसे बाहर उपयोग कर रहे हैं, भीतर कभी ले नहीं जाते। तो सारी दुनिया को देखते हैं, अपने घर को छोड़ जाते हैं।

इसलिए अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि मृत्यु तो किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती है अपनी, सिर्फ दूसरे की दिखाई पड़ती है। इसलिए दूसरे के संबंध में जो भी आपको दिखाई पड़ता है, उसको बहुत मानना मत, वह झूठा है, ऊपर-ऊपर है। अपने सम्बन्ध में भीतर जो दिखाई पड़े, वही सत्य है—वही गहरा है। और जब आपको अपना सत्य दिखाई पड़ेगा, तभी आपको दूसरे का सत्य भी दिखाई पड़ेगा। जिस दिन आपको पता चल जाएगा, मैं नहीं मरूंगा, उस दिन फिर कोई भी नहीं मरेगा आपके लिए। फिर आप कहेंगे कि वस्त्र बदल लिए।

रामकृष्ण की मृत्यु हुई तो पता चल गया था कि तीन दिन के भीतर वे मर जाने वाले हैं। जो लोग भी जाग जाते हैं, वे अपनी मौत की घोषणा कर सकते हैं, क्योंकि शरीर संबंध छोड़ने लगता है। कोई एकदम से तो छूटता नहीं, कोई छः महीने लगता है शरीर को संबंध छोड़ने में। इसलिए मरने के छः महीने पहले जिसका होश साफ है, वह अपनी तारीख कह सकता है कि इस तारीख को इस घड़ी में मर जाऊंगा। तीन दिन पहले तो बिल्कुल संबंध टूट जाता है, बस आखिरी धागा जुड़ा रह जाता है। वह दिखाई पड़ने लगता है कि बस एक धागा रह गया है, यह किसी भी क्षण टूट जाएगा।

रामकृष्ण को तीन दिन पहले पता हो गया था कि उनकी मृत्यु आ रही। तो उनकी पत्नी शारदा रोती थी, चिल्लाती थी। रामकृष्ण उसको कहते थे कि पागल तू रोती-चिल्लाती क्यों है, क्योंकि मैं नहीं मरूंगा। लेकिन शारदा कहती थी, सब डाक्टर कहते हैं, सब प्रियजन कहते हैं कि आपकी मृत्यु करीब है। और वे कहते थे कि तू उनकी मानती है या मेरी— मेरी मानती है या उनकी। मैं नहीं मरूंगा। मैं रहूंगा यहीं। लेकिन शारदा को कैसे भरोसा आए। रामकृष्ण का यह कहना उनके अपने भीतर के अनुभव की बात है। वे कह रहे हैं कि मैं नहीं मरूंगा।

रामकृष्ण को कैंसर हुआ था। कठिन कैंसर था, गले में था और भोजन पानी सब बन्द हो गया। बोलना भी मुश्किल हो गया। पर रामकृष्ण ने कहा है कि देख तुझसे मैं कहता हूं, जिसको कैंसर हुआ था, वही मरेगा। मुझे कैंसर भी नहीं हुआ था। यह गला रुंध गया है, यह गला बन्द हो गया है, यह गला सड़ गया है, यह कैंसर से मर गया है, लेकिन मैं देख रहा हूं कि मैं यह गला नहीं हूं। तो गला मर जाएगा, यह शरीर गल जाएगा, मिट जाएगा, लेकिन मैं नहीं मरूंगा। पर हमें कैसे भरोसा आए, क्योंकि हमें अनुभव न हो। हम तो मानते हैं कि हम शरीर हैं। तो जब शरीर मरता है, तो हम मानते हैं कि हम भी मर गए। हमारे जीवन की भ्रांति हमारी मृत्यु की भी भ्रांति बन जाती है।

अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा, आपको भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जिस दिन मृत्यु के द्वार पर आप खड़े हो जाएंगे और देखेंगे कि मर रहा है सब कुछ, तब भी एक आप बाहर खड़े रहेंगे। आप नहीं मर रहे हैं, आपके मरने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए अर्जुन बात नहीं कर रहा है अपनी मृत्यु की।

एक और मित्र ने भी बहुत गहरा सवाल पूछा है। उन्होंने पूछा है कि हम सब भगवान हैं, सब भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ सकता है; लेकिन अंश पूर्ण नहीं हो सकता, अंश तो अंश ही होगा। तो हम भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ जाता है लेकिन भगवान हैं यह समझ में नहीं आता। तो इतना ही कहना उचित है कि हम भगवान के अंश हैं लेकिन भगवान हैं, यह कहना उचित नहीं है।

यह सवाल महत्वपूर्ण है और जो लोग गणित को समझते हैं, उन्हें बिल्कुल ठीक, साफ समझ में आ जाएगा कि ऐसा ही होना चाहिए, अंश कभी अंशी नहीं हो सकता। टुकड़ा पूर्ण कैसे हो सकता है! टुकड़ा, टुकड़ा है! हम एक सागर से एक चुल्लू भर पानी ले लें, तो वह सागर नहीं है, सागर का अंश हो सकता है। यह सीधा गणित है।

स्वभावत: एक रुपये का नोट, एक रुपये का नोट है वह सौ का नहीं हो सकता, सौ का एक हिस्सा हो सकता है, सौवां हिस्सा हो सकता है। यह सीधा गणित है और जहां तक गणित जाता है, वहां तक बिल्कुल ठीक है।

लेकिन धर्म गणित से आगे जाता है। और धर्म बड़ा उल्टा गणित है। उसे थोड़ा समझने के लिए चेष्टा करनी पड़ेगी। क्योंकि सामान्य गणित तो हम रोज उपयोग करते हैं हमें पता है। धर्म का गणित हमें बिल्कुल पता नहीं। धर्म के गणित का पहला सूत्र यह है कि वहां अंशी और अंश एक है।

आपने ईशावास्य का पहला सूत्र सुना है उस पूर्ण से पूर्ण निकल आता है और पीछे भी पूर्ण शेष रह जाता है। आप किसी सौ रुपये में से एक रुपये का नोट बाहर निकालें, पीछे निन्यानबे शेष रहेंगे, सौ शेष नहीं रहेंगे। लेकिन यह सूत्र तो बड़ी गजब की बात कहता है, यह कहता है कि सौ में से सौ भी बाहर निकालो तो भी सौ ही पीछे शेष रह जाता है। पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। इसका क्या मतलब हुआ? यह तो हमारे सारे गणित की व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है। अगर यह उपनिषद् का सूत्र सही है, तो हमारा सारा गणित गलत है। अध्यात्म के जगत में गणित गलत है, उसके कारण हैं। उसे हम दो-तीन तरह से समझें तो ख्याल में आ जाय।

पहली तो बात यह, कि जो निराकार है उसमें से हम अंश को बाहर नहीं निकाल सकते, कोई उपाय नहीं है। आप सागर में से चुल्लू भर के पानी बाहर निकाल लेते हैं, क्योंकि सागर के बाहर भी जगह है। इसलिए आप पानी भर लेते हैं चुल्लू में। ऐसा समझें कि सागर ही सागर है और सागर के बाहर कोई जगह नहीं, फिर आप चुल्लू भी भर लें, तो आपकी चुल्लू में अंश नहीं होगा, पूरा सागर ही होगा। बाहर तो हम इसलिए

निकाल लेते हैं कि बाहर सुविधा है, सागर में से चुल्लू भर पानी बाहर निकाल लेते हैं। परमात्मा से चुल्लू भर निकालना मुश्किल है, क्योंकि परमात्मा के बाहर कोई जगह नहीं है—सिर्फ वही है। उसके बाहर निकालिएगा कैसे ? कौन निकालेगा ? कहां निकालेगा ? उसके बाहर निकालने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए परमात्मा को खंड-खंड करने का भी कोई उपाय नहीं है। आप अखंड परमात्मा हो, टुकड़े-टुकड़े नहीं हो। टुकड़ा हो नहीं सकता उसका। और अगर परमात्मा का टुकड़ा हो जाय, तो हमने बड़ा भारी काम कर लिया, मार ही डाला न उसको। उसके टुकड़े नहीं हो सकते—कि आप एक टुकड़ा हो, मैं एक टुकड़ा हूं और तीसरा आदमी, तीसरा टुकड़ा है। ऐसे उसके कोई टुकड़े नहीं हो सकते, क्योंकि टुकड़ा होगा उसका, जिसके बाहर भी कोई जगह हो। परमात्मा का कोई टुकड़ा नहीं हो सकता।

इसलिए जो लोग कहते हैं, हम परमात्मा का अंश हैं, बिल्कुल गलत कहते हैं; क्योंकि अंश का मतलब है—आप टुकड़ा हो गए, आप अलग हो गए। आप परमात्मा में हैं पूरे के पूरे और पूरा का पूरा परमात्मा आप में है। इसमें कोई बटाब के उपाय नहीं हैं, काटने की कोई सुविधा नहीं है, डिवीजन नहीं हो सकते; क्योंकि वह अकेला ही है। कैसे बांटिएगा ? कौन बांटे ? कहां बांटे ? कहां है जगह, जिसमें हम बांट लें ? और दो टुकड़ों के बीच तो फासला हो जाता है। आपके और परमात्मा के बीच जरा भी फासला नहीं है, इसलिए आपको टुकड़ा नहीं कहा जा सकता। आप एक फल के दो टुकड़े कर लेते हैं दोनों में फासला हो जाता है।

आपके और परमात्मा के बीच इन्च भर भी फासला नहीं है। आप को टुकड़ा नहीं कहा जा सकता। आपको अंश नहीं कहा जा सकता। या तो आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं और या बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं। इन दो के बीच तीसरा कोई उपाय नहीं है। मगर हमारी बुद्धि समझौते के लिए तैयार रहती है। वह सोचती है कि पूरा परमात्मा कहना जरा जरूरत से ज्यादा हो जाएगा। और बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं, तो भी बड़ी मन को दीनता मालूम पड़ती है इसलिए ऐसा कहो कि थोड़े-थोड़े परमात्मा हैं, जरा-जरा। लेकिन जरा-जरा परमात्मा का क्या अर्थ होता है ? थोड़े-थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होता है ? थोड़ा परमात्मा पुरे परमात्मा से कम

होगा ? तो वह परमात्मा ही नहीं होगा। थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होगा !

ऐसा समझें कि एक आदमी आपसे कहता है कि थोड़ा-थोड़ा आपसे प्रेम है, थोड़ा-थोड़ा। क्या मतलब होता है थोड़ा-थोड़ा प्रेम का। या तो प्रेम होता है या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा प्रेम जैसी कोई चीज नहीं होती, हो भी नहीं सकती। आप कहते हैं कि मैं थोड़ा-थोड़ा चोर हूं। थोड़ा-थोड़ा कोई चोर होता है ! या तो आप चोर हैं या चोर नहीं हैं। थोड़ा-थोड़ा आप क्यों कहते हैं ? कहते हैं मैं लाख की चोरी नहीं करता, पैसे दो पैसे चुराता हूं। इसलिए थोड़ा-थोड़ा चोर हूं।

लेकिन एक पैसे की चोरी भी उतनी ही चोरी है, जितनी लाख रुपये की चोरी। या लाख और एक का फासला चोरी का फासला नहीं है, चोरी करने की जो चित्त-दशा है, वह एक पैसे में भी उतनी ही है जितनी करोड़ में। इसलिए करोड़ की चोरी बड़ी और एक पैसे की चोरी छोटी, ये सिर्फ नासमझ कहेंगे, जिनको सिर्फ गणित आता है, जिनको गणित के पार कुछ दिखाई नहीं पड़ता। चोरी बराबर होती हैं। एक पैसे की चोरी में भी आप पूरे चोर होते हैं, पूरे चोर होते हैं। और एक करोड़ की चोरी में भी उतने ही चोर होते हैं, पूरे चोर होते हैं। क्या आप चुराते हैं, इससे चोर होने में फर्क नहीं पड़ता। या तो आप चोर हैं, या चोर नहीं हैं। इन दोनों के बीच बटाव नहीं है।

ठीक ऐसे ही या तो आप परमात्मा हैं—पूरे के पूरे और या बिलकुल नहीं हैं। बीच में थोड़े-थोड़े परमात्मा, ऐसा समझौता हमारा गणित करने वाला जो मन है, वह करता है। उससे हमें राहत भी मिलती है, लेकिन वह सत्य नहीं है। असीम को खंडों में नहीं बांटा जा सकता है।

आस्पेन्स्की ने, रूस के एक बहुत बड़े गणितज्ञ ने एक किताब लिखी है—'टरशियम आरगानम'। गणित के ऊपर लिखी गई मनुष्य के इतिहास में श्रेष्ठतम पुस्तकों में से एक है। खुद आस्पेन्स्की का भी दावा है कि तीन ही किताबें दुनिया में हैं, जिनमें वह एक है। और उसके दावे में जरा भी दम्भ नहीं है, दावा बिलकुल सही है। तर्क के ऊपर पहली तर्क और गणित के सिद्धान्त पर पहली किताब लिखी है अरस्तू ने। उस किताब का नाम है—

'आरगानम'। आरगानम का मतलब है—पहला सिद्धान्त। फिर दूसरी किताब लिखी है बेकन ने, उस किताब का नाम है—'नोवम् आरगानम'—नया सिद्धान्त। और आस्पेन्स्की ने तीसरी किताब लिखी है—'टरशियम आरगानम'—तीसरा सिद्धान्त, गणित का तीसरा सिद्धान्त। और आस्पेन्स्की ने अपनी किताब में जो ऊपर ही घोषणा की है, वह बड़ी मजेदार है। वह यह है कि दोनों सिद्धांतों के पहले भी मेरा सिद्धान्त मौजूद था। ये दोनों किताबें लिखी गईं, इसके पहले भी मेरा सिद्धान्त मौजूद था।

उन दोनों किताबों में, जो प्रश्न आपने पूछा है, उसी गणित का विस्तार है—कि अंश कभी भी अंशी के बराबर नही हो सकता—खंड कभी अखंड के बराबर नहीं हो सकता। और आस्पेन्स्की ने लिखा है—कि खंड, अखंड के बराबर है—टुकड़ा पूरे के बराबर है। क्यों? क्योंकि असीम के गणित में खंड हो ही नहीं सकता। इसलिए ईशावास्य का सूत्र बड़ा कीमती है—कि पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। क्यों शेष रह जाता है? क्योंकि आप निकाल ही नहीं सकते, तरकीब यह है। आप निकाल ही नहीं सकते। पूर्ण से पूर्ण को निकाला नहीं जा सकता। आप सिर्फ वहम में पड़ते हैं कि निकाल लिया, इसलिए पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। वह सिर्फ आपका धोखा था कि मैंने निकाला। निकालने का कोई उपाय नहीं है। आपको लगता है कि आप अंश हैं, यह धोखा है। अंश होने का कोई उपाय नहीं। आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं, अभी और यहीं। ऐसा भी नहीं कहता हूं कि कल हो जाएंगे; क्योंकि जो आप नहीं हैं वह कल भी नहीं हो पाएंगे और जो आप नहीं हैं, वह होने का कोई उपाय नहीं है। कल हो सकता है आपको पता चले, लेकिन हैं आप अभी और यहीं। जितनी भी आपको देरी लगानी है, वह आप पता लगाने में कर सकते हैं, होने में कोई फर्क नहीं पड़ता।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो बुद्ध से पूछा गया कि तुम्हें क्या मिला। तो बुद्ध ने कहा कि मिला मुझे कुछ भी नहीं, सिर्फ मैंने उल्टा खोया। पूछने वाला चकित हुआ होगा, क्योंकि हम सोचते हैं ज्ञान में मिलना चाहिए। हम तो लोभ से जीते हैं। हमारा तो गणित फैलाव का है। और बुद्ध कहते हैं कि मिला मुझे कुछ भी नहीं, उल्टा खो गया। क्या खो गया? तो बुद्ध ने कहा, मेरा अज्ञान खो गया। और जो मुझे मिला है, वह मैं जानता हूं कि

मुझे सदा ही मिला हुआ है—वह मैंने कभी खोया ही नहीं था, सिर्फ मुझे पता नहीं था। जो मेरी ही सम्पदा थी, वह मेरी ही आंख से ओझल थी। जिस जमीन पर मैं सदा से खड़ा था, उसको ही मैं देख नहीं रहा था और सारी तरफ खोज रहा था। अपने को छोड़ कर सब तरफ भटक रहा था और मैं सदा से था। जो मुझे मिला है, वह उपलब्धि नहीं है, आविष्कार है—सिर्फ मैंने उघाड़कर देख लिया है।

आप परमात्मा हैं अभी और यहीं। लेकिन हमें यह मानने में तकलीफ होगी। क्या कारण है? क्या-क्या तकलीफें हैं हमारे मन में मानने में कि हम अपने को परमात्मा मान लें। बड़ी तकलीफें हैं, क्योंकि परमात्मा मानते से ही आप जैसे हैं वैसे ही जी न सकेंगे। तब चोरी करने को हाथ बढ़ेगा और आप अपने को परमात्मा मानते हैं, बड़ी घबड़ाहट होगी कि यह मैं क्या कर रहा हूं। तब किसी की जेब काटने को हाथ बढ़ेगा और परेशानी कि यह मैं क्या कर रहा हूं। आपका यह ख्याल भी, विचार भी कि परमात्मा हूं आपकी जिन्दगी को बदल देगा, आप वही आदमी नहीं रह जाएंगे जो आप हैं। एक चौबीस घंटे परमात्मा की तरह मानकर जी के देखें। कल्पना ही सही, एक्ट ही करना पड़े कोई हर्ज नहीं। एक चौबीस घंटे ऐसे जी कर देखें जैसे मैं परमात्मा हूं, आपकी जिन्दगी दूसरी हो जाएगी। इससे घबड़ाहट है। हम अपने चोर को, बेईमान को, बदमाश को बचाना चाहते हैं तो कोई हमसे कह दे शैतान हो, तो हमें कोई एतराज नहीं होता। कोई हमसे कह दे भगवान हो, तो हमें बेचैनी शुरू होती है, क्योंकि वह झंझट की बात कह रहा है। अगर मान लें तो फिर जो हम हैं वही हम न रह पाएंगे। उसमें बदलाहट करनी पड़ेगी। और उसमें बदलाहट नहीं करना चाहते हैं, तो फिर उचित यही है कि हम न मानें। लेकिन बिल्कुल इंकार करने की भी हिम्मत नहीं होती, क्योंकि हर आदमी गहरे में तो चाहता है कि परमात्मा हो। वह चाह स्वाभाविक है। वह चाह वैसे ही है, जैसे बीज चाहता है कि वृक्ष हो—जैसे कि बीज चाहता है कि खिलें, फूल बनें, आकाश में सुगन्ध बिखराएं। यह सब बीज चाहता है कि ऊपर उठें, सूरज को चूमें, आकाश में खिलें।

वैसे ही आपके भीतर भी जो असलियत छिपी है, वह प्रकट होना चाहती है, इसलिए वह कहती है—बहो, फैलो, विस्तीर्ण हो जाओ। और

विस्तीर्ण होने का अन्तिम आयाम भगवान है। वही विस्तीर्णता का आखिरी रूप है और जब तक आदमी भगवान न हो जाय तब तक कोई तृप्ति नहीं है। क्योंकि जब तक जो आपके भीतर छिपा है, वह पूरी तरह खुल न जाय, प्रगट न हो जाय उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी खिल न जाय तब तक कोई चैन नहीं है।

इसलिए आदमी इंकार भी नहीं कर पाता, स्वीकार भी नहीं कर पाता, ऐसी दुविधा में जीता है। लेकिन आपसे कहता हूं कि उसके कोई खंड नहीं हुए, यह अखंड है और यह अखंड की तरह ही आप में मौजूद है। उसे स्वीकार करें। और उसके साथ जीने की कोशिश शुरू करें। यह विचार भी आपके जीवन में क्रांति बन जाएगी। यह विचार का बीज भी भीतर पड़ जाय, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चारों तरफ आपका सब कुछ बदलने लगेगा।

हमारे विचार भी क्षुद्र हैं। हम विराट विचार तक को स्वीकार करने में घबड़ाते हैं। हम क्षुद्र विचार में जीते हैं, क्योंकि हमारा व्यक्तित्व उसके आसपास आसानी से रह पाता है। विराट को जगह दें थोड़ी, अभी ख्याल ही सही कोई बात नहीं, क्योंकि जो आज विचार है, वह कल व्यक्तित्व बन जाएगा। और जो आज छिपा हुआ बीज है, वह कल वृक्ष हो जाएगा। जो आज सोचा है, वह कल हो जाएगा।

बुद्ध ने कहा है, तुम जो भी हो गए हो, तुम्हारे पिछले विचारों का परिणाम है। और तुम जो विचार आज कर रहे हो, वह तुम कल हो जाओगे। इसलिए विचार में थोड़ी बुद्धिमानी बरतना। लेकिन एक आदमी के मन में अगर यह विचार बैठ जाय कि मैं परमात्मा हूं, तो एक बात पक्की है कि उसके शैतान को सुविधा मिलनी मुश्किल हो जाएगी। और एक आदमी को यह विचार बैठ जाय कि मैं शैतान हूं, तो उसके शैतान को बहुत सुविधा मिलनी शुरू हो जाएगी।

मनस्विद् कहते हैं कि आप वही हो जाते हैं, जिसका स्वप्न आपमें पैदा हो जाता है। अभी तो मनस्विद् कहते हैं कि स्कूल में किसी बच्चे को गधा, मूर्ख नहीं कहना चाहिए; क्योंकि अगर यह धारणा मजबूत हो जाय, तो वही हो जाएगा जो उसके शिक्षक कह रहे हैं। और दुनिया में इतने जो

गधे दिखाई पड़ते हैं, इसमें नब्बे परसेन्ट शिक्षकों का हाथ है। ये बेचारे गधे थे नहीं। इनको गधे कहने वाले लोग मिल गए। और उन्होंने धारणा इतनी मजबूत बिठा दी कि अब ये भी मानते हैं, अब ये स्वीकार करते हैं।

मनस्विद् कहते हैं, किसी को ऐसा कहना गलत है। किसी को बीमार कहना गलत है। अभी तो मनस्विद् कहते हैं कि चिकित्सक के पास जब कोई बीमार आए, तो उसे ऐसे व्यवहार करना चाहिए जैसे वह बीमार नहीं है। दवा भले ही दें लेकिन व्यवहार ऐसा करें कि जैसे वह बीमार नहीं है, क्योंकि उसका व्यवहार दवा से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि व्यवहार उसके मन में चला जाएगा, दवा केवल शरीर में जाएगी। लेकिन जो क्वैक डाक्टर हैं, धोखे-धड़े वाले डाक्टर हैं, वे आपको देखकर ऐसी घबड़ाहट पैदा करते हैं, जैसे आप बिलकुल मरणासन्न हैं। क्योंकि आप मरे आ गए हैं तो आप बच नहीं सकते—कि उनके पास आ गए अब बच जाएंगे, नहीं तो बच नहीं सकते। छोटी-सी फुन्सी आपको हो, तो वह कैंसर जैसी घबड़ाहट पैदा करते हैं, क्योंकि तभी आपका शोषण किया जा सकता है। और फुन्सी भी कैंसर हो सकती है अगर भरोसा आ जाय। भरोसा बड़ी चीज है। बहुत बड़ी चीज है, क्योंकि भरोसा काम करना शुरू कर देता है। आपके भीतर एक ख्याल बैठ गया कि मैं बीमार हूं, तो आप बीमार हो जाएंगे।

मेरे एक शिक्षक थे, मेरी बात मानने से राजी नहीं थे। मैं उनसे कहता था, जो आदमी मान ले धीरे-धीरे हो जाता है। वे कहते थे, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि कोई कितना ही मान ले कि मैं नेपोलियन हूं, नेपोलियन तो नहीं हो जाएगा, पागल हो जाएगा। जिस युनिवर्सिटी में मैं पढ़ता था वे वहीं शिक्षक थे, मेरे शिक्षक थे। जहां हमारा डिपार्टमेन्ट था वहां से कोई एक मील के फासले पर वे नीचे युनिवर्सिटी के कैम्पस में ही रहते थे। फिर मैंने एक दिन योजना बनाई, कोई पन्द्रह दिन बाद जब मुझसे यह बात हुई थी।

पन्द्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और उनकी पत्नी को मैंने कहा कि मेरी प्रार्थना है, स्वीकार कर लें। एक प्रयोग में लगा हूं किसी को कहना मत। सुबह उठते ही अपने पति को कहना कि आज तबीयत कुछ खराब है क्या? पीला चेहरा मालूम पड़ता है। रात सोये नहीं क्या? आंख लाल-लाल दिखाई पड़ती है। उनकी पत्नी ने कहा, लेकिन वे बिलकुल ठीक हैं।

मैंने कहा, इसकी फिक्र न करें, छोटा प्रयोग कर रहा हूं आप सिर्फ इतना करें और वह जो भी कहें, यह कागज की एक पट्टी दे जाता हूं इस पर ठीक उन्हीं के शब्द लिख देना, वे जो भी वक्तव्य दें इसके उत्तर में। फिर उनके नौकर को कहा, बाहर बगीचे के माली को कहा कि जब वे बाहर आएं, तो कृपा करके इतना ही पूछना कि आपके पैर कुछ डांवाडोल मालूम पड़ते हैं। तबीयत ठीक नहीं है क्या ? वे जो कहें इस कागज पर लिख देना। फिर रास्ते में एक पोस्ट-आफिस पड़ता था, उसके पोस्ट-मास्टर को जाकर कहा कि जब वे यहां से निकलें कृपा करके तुम बाहर रहना। इतना उनसे पूछ लेना कि क्या बात है, बहुत दिन बाद दिखाई पड़े, तबीयत खराब हो गई थी क्या ? ऐसा रास्ते में कोई दस जगह मैं लोगों को चिट्ठियां देकर आया। डिपार्टमेन्ट का जो चपरासी था, उससे मैंने कहा कि तू एकदम उठकर उनको संभाल लेना कि आप बिल्कुल गिरे पड़ते हैं। वह बोला, लेकिन वे नाराज होंगे, ऐसा कैसा करूंगा ! मैंने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत करना, जुम्मा मेरा है। तू एकदम संभाल लेना; कुर्सी पर बिठा देना कि आपकी हालत तो खराब हो गई है।

पत्नी के प्रश्न करने पर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि कौन कहता है कि मेरी हालत खराब है, मैं बिल्कुल ठीक हूं, रात अच्छी तरह सोया। पट्टी पर पत्नी के लिखा हुआ था कि मैं बिल्कुल ठीक हूं, रात अच्छी तरह सोया, तुम्हें कोई वहम पैदा हो गया, तेरी आँख में कुछ भूल है। लेकिन इतनी ताकत, जब बाहर माली ने उनसे पूछा कि मालिक तबीयत कुछ खराब है, उनके उत्तर में नहीं थी। माली की चिट्ठी पर लिखा हुआ था— हां, रात से कुछ ढीला-ढीला अनुभव कर रहा हूं। अभी सिर्फ कमरे और बाहर का फर्क पड़ा। और जब पोस्ट मास्टर ने उनसे पूछा कि क्या बात है बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े, तबीयत कुछ खराब है, तो उन्होंने कहा कि रात से कुछ थोड़ा-सा बुखार है। और जब कमरे के चपरासी ने आकर उनको संभाला, कुर्सी पर बिठाला, तो उन्होंने चपरासी से कहा, तू पूछताछ मत कर जाकर किसी और प्रोफेसर की गाड़ी ले आ, मुझे घर पहुंचा दे; मेरा शरीर तप रहा है और हालत मेरी ठीक नहीं है। और जब मैंने ये दसों चिट्ठियां उनके सामने रात को जाकर रखीं, तो उन्हें एक सौ तीन डिग्री बुखार था। मैंने कहा, ये चिट्ठियां पढ़िये और बिस्तर के बाहर निकल आइये।

यह बुखार झूठा है या सच ? यह बुखार सच है, क्योंकि थर्मामीटर पकड़ता है, उसको झूठा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सचाई का और उपाय क्या है, थर्मामीटर पकड़ लें तो चीज सत्य होगी। मैंने कहा, यह बुखार सच है; लेकिन सिर्फ एक धारणा का परिणाम है। सुबह से मैं आपके चारों तरफ प्रचार कर रहा हूं कि आप बीमार हैं। और यह बीमारी का ख्याल आपको पकड़ गया है।

आदमी, आदमी नहीं है। आदमी सिर्फ एक संभावना है। और अगर पश्चिम में डार्विन ने लोगों को समझा दिया है कि आदमी बन्दर की औलाद है और आदमी को अगर भरोसा हो गया, तो पता नहीं आदमी बन्दर की औलाद है या नहीं, आदमी बन्दर की औलाद के जैसा व्यवहार करेगा। भरोसा है—यह सवाल बड़ा नहीं है, कि वह सच में है या नहीं। अभी तक तय भी नहीं है कि वह बन्दर की औलाद है। लेकिन डार्विन ने जो भरोसा पश्चिम को दिला दिया कि आदमी बन्दर की औलाद है—उसका बड़ा परिणाम हुआ। जब आदमी बन्दर की औलाद है, तो बात ही खत्म हो गई, हमने स्वीकार कर लिया कि हम बन्दर जैसे हैं।

जब फ्रायड ने लोगों को भरोसा दिला दिया कि आदमी सिवाय काम-वासना के, सिवाय सैक्सुअँलिटी के और कुछ भी नहीं है, तो पता नहीं वह ठीक कह रहा है कि गलत, लेकिन जिनको भरोसा आ गया कि हम सिर्फ सेक्स, सिर्फ काम-वासना हैं, वे काम वासना में ही ठहर गए। अगर आज पश्चिम पूरी तरह काम-वासना से भर गया है, तो उसका जुम्मा फ्रायड पर है, जिसने एक धारणा दे दी।

आदमी एक सम्भावना है—फ्लेक्सिबिल, बड़ी लोचपूर्ण सम्भावना है। यही उसकी खूबी है। आप किसी कुत्ते को और कुछ नहीं बना सकते, वह कुत्ता ही रहेगा। किसी शेर को कुछ नहीं बना सकते, वह शेर ही रहेगा। फ्लेक्सिबिल नहीं है, फिक्सड, लोच नहीं है। आदमी लोचपूर्ण है। आदमी को जो धारणा दे दें, वह वही बन जाएगा।

जब मैं आपसे कहता हूं आप ईश्वर हैं, तो मैं आपको एक धारणा दे रहा हूं परम विस्तार की। उस धारणा का आज ही फल नहीं हो जायेगा ना, कि आज ही आप एकदम से छलांग लगाकर ईश्वर नहीं हो जाएंगे—

यह मैं जानता हूं। लेकिन वह धारणा अगर गहरे में बैठ जाय, तो आपके भीतर जो छिपा है, उसका आविष्कार हो जाएगा। और ईश्वर होना आपकी संभावना है, आपके भीतर छिपा है। आप कितने ही जन्मों जन्मों तक टालते रहें, बच न सकेंगे। इसलिए ईश्वर को कोई जल्दी भी नहीं है कि आप अभी ईश्वर हो जाएं; समय की वहां कोई कमी नहीं है। अनन्त समय पड़ा है। आप कितने ही जन्म भागते रहें, दौड़ते रहें, सब कुछ करते रहें, एक न एक दिन आप उसके जाल में गिर जाएंगे। लेकिन जब तक आप नहीं गिरते, तब तक अकारण दुख भोगते हैं। जोर मैं जोर देकर कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, उसका कुल कारण गहरे में इतना है कि जो आपकी अन्तिम नियति है, जो डेस्टेनी है, जो आपकी आखिरी होने की सम्भावना है, वह परमात्मा है! और वह आपका बीज भी है क्योंकि आखिर में वह वही हो सकता है जो उसमें छुपा हो। शुरू से कुछ भी पैदा नहीं हो तो जो मौजूद है उसी का उद्घाटन होता है। अगर आपके मन में ख्याल बैठ जाय और यह ख्याल सत्य के, अत्यन्त अनुकूल है कि आप खंड नहीं, अखंड आपके भीतर विराजमान है। ये कैसे अखंड विराजमान होगा? इसे थोड़ा हम समझें।

स्वामी राम कहा करते थे कि ऐसा हुआ एक बार कि एक राजा के महल में एक कुत्ता घुस गया। राजा ने जो महल बनाया था उसमें उसने हजारों कांच के टुकड़े लगाए थे। हर कांच का टुकड़ा एक दर्पण था। कुत्ता जब अन्दर गया तो उसने देखा कि लाखों कुत्ते खड़े हैं। हर कांच के दर्पण में एक-एक कुत्ता खड़ा था—पूरा का पूरा। ऐसा नहीं कि एक टुकड़ा, कि लाख कांच लगे थे तो लाख टुकड़े हो गये कुत्ते के और एक-एक टुकड़ा एक-एक कांच में दिखाई पड़ने लगा। लाख कांच लगे थे तो लाख कुत्ते हो गये—पूरे के पूरे। पूरा कुत्ता टुकड़ा में दिखाई पड़ने लगा। कुत्ता घबड़ाया, भौंका लाख कुत्ते भौंके। कुत्ता घबड़ा गया और भी ज्यादा, क्योंकि लाख कुत्ते भौंक रहे थे चारों तरफ से। चीखा, दौड़ा, कुत्ता कांच की आइनों की तरफ दौड़ा। कांच के आइनों के कुत्ते, कुत्तों की तरफ दौड़े। कुत्ता वहां मर गया उसी रात—लड़ता रहा रात भर, मर गया।

करीब-करीब आदमी की हालत यही है। आपमें परमात्मा पूरा प्रतिबिम्बित हो रहा है। आप एक दर्पण हैं, एक मिरर। हर आदमी एक मिरर है। और आदमी ही क्यों, पौधा, पशु, पक्षी, समस्त कण इस जगत के

दर्पण हैं। और आपमें परमात्मा पूरा छलक रहा है, पूरा उसका प्रतिबिम्ब बन रहा है, कट नहीं गया, टुकड़ा नहीं हो गया। लेकिन आप अपने में बनते प्रतिबिम्ब को नहीं देख रहे हैं, आप भी उस कुत्ते का व्यवहार कर रहे हैं। आप भौंक रहे हैं, आसपास के दर्पणों में। वहां से उत्तर आ रहा है, आप घबड़ा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं। जिन्दगी एक चिन्ता है, क्योंकि संघर्ष है चारों तरफ। वह कुत्ता जैसे मर गया उस रात उस महल में, हम भी संसार में ऐसे ही परेशान होकर मरते हैं। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह और हम एक का ही प्रतिबिम्ब थे। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह हमारी ही छाया थी और हम उसकी छाया थे। लेकिन यह गहन अनुभव तभी संभव हो पाता है, जब विचार की एक पृष्ठभूमि तैयार हो जाये।

जब मैं कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, तो सिर्फ इसलिए कि एक विचार की भूमिका तैयार हो जाय; और फिर आप इस यात्रा पर निकल पाएं। आप जिद्द करते हैं कि नहीं हैं। आप जिद्द यह कर रहे हैं कि हमें इस यात्रा पर नहीं जाना है। न जाना हो, आपकी मर्जी। आपको कोई जबर्दस्ती इस यात्रा पर नहीं भेज सकता है। लेकिन अगर जाना हो तो आपको इस यात्रा के कुछ सूत्र समझ लेने जरूरी हैं। और पहला सूत्र यह है कि अन्त में जो आप हो जाएंगे, वह आप आज और अभी, यहीं हैं। कितना ही समय लगे, लेकिन समय केवल वही प्रकट कर पाएगा जो आपमें छिपा था।

महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं इसीलिए कि उनमें वह प्रकट हो गया है जो हममें प्रकट नहीं है। लेकिन हममें और उनके स्वभाव में कोई भेद नहीं है, सिर्फ अभिव्यक्ति का फर्क है।

ऐसा समझिए कि दो कवि हैं। एक कवि चुप बैठा है और एक गा रहा है जो गा रहा है वह आपको कवि मालूम पड़ेगा। जो चुप है वह कवि नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन कवि होने में जरा भी अन्तर नहीं है। वह भी गाएगा, वह भी गा सकता है। वह गाएगा ही, भीतर उसके गीत मौजूद है, वह प्रकट होगा। एक बीज पड़ा है और एक वृक्ष लगा है। वृक्ष में फूल खिल गये और बीज में तो कुछ भी पता नहीं चलता है, कंकड़-पत्थर की तरह पड़ा हुआ है। आपको वृक्ष अलग दिखाई पड़ता है, आप वृक्ष को नमस्कार करते हैं, बीज को नहीं। लेकिन बीज में भी वृक्ष छिपा है। और

यह जो वृक्ष आज खड़ा है कल यह भी बीज की तरह कहीं पड़ा था। और आज जो बीज की तरह पड़ा है कल भविष्य में वृक्ष हो जाएगा।

आप बीज हैं परमात्मा के—जब मैं जोर देता हूं कि आप परमात्मा हैं। इसकी स्वीकृति, इसका सहज स्वीकार आपके विकास में सहयोगी, साथी बन जाता है। इसका अस्वीकार संकुचन दे देता है। आप अपने भीतर कुन्द होकर बन्द हो जाते हैं। फिर आपकी मर्जी।

अब हम सूत्र को लें।

'हे विश्वमूर्ति ! मैं पहले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूं, और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव ! आप उस चतुर्भुज रूप को ही मेरे लिए दिखाइए। हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइए।"

अर्जुन बड़ी दुविधा में है। दोहरी बातें एक साथ हो रही हैं। राबिया—एक सूफी फकीर औरत के बाबत सुना है मैंने कि वह हंसती भी थी और रोती भी थी—साथ-साथ। और जब लोग उससे पूछते कि राबिया, क्या तू पागल हो गई—तू हंसती भी है और रोती भी है साथ-साथ। हमने रोते हुए लोग भी देखे, हमने हंसते हुए लोग भी देखे। बाकी दोनों साथ-साथ करता हुआ हमने कभी नहीं देखा। कारण क्या है ? तो राबिया कहती हंसती मैं उसे देखकर और रोती मैं तुम्हें देखकर। हंसती मैं उसे देखकर, जो छाया है चारों तरफ और रोती मैं तुम्हें देखकर कि तुम्हें बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। हंसती हूं मैं उसे देखकर, जो मुझे आज अनुभव आ रहा है और रोती हूं मैं उसे सोचकर, जो मैंने कल तक माना था। हंसना और रोना जब एक साथ घटित हो, तो हम आदमी को पागल कहते हैं; क्योंकि सिर्फ पागल ही हंसते और रोते एक साथ हैं। क्योंकि हम तो बांध लेते हैं समय में चीजों को। जब हम रोते हैं तो रोते हैं, जब हंसते हैं तो हंसते हैं, दोनों साथ-साथ नहीं करते। लेकिन जब बहुत बड़ा अनुभव घटित होता है, जिससे जिन्दगी दो हिस्सों में बंट जाती है—पिछली जिन्दगी अलग हो जाती है और आनेवाली जिन्दगी अलग हो जाती है—हम एक चौराहे पर खड़े हो जाते हैं, जहां पीछा भी दिखाई पड़ता है और आगा भी, और जहां दोनों बिल्कुल भिन्न हो जाते हैं। और दोनों के बीच कोई सम्बन्ध भी नहीं रह जाता, वहां दोहरी बातें एक साथ घट जाती हैं।

तो अर्जुन को हर्षित होना भी हो रहा है, भयभीत होना भी हो रहा है। वह प्रसन्न भी है, जो उसने देखा अहोभाग्य उसका और वह घबड़ा भी गया है जो उसने देखा। इतना विराट है जो उसने देखा कि वह कंप रहा है। अपनी क्षुद्रता का अनुभव भी तभी होता है, जब हम विराट के सामने हों; नहीं तो अपनी क्षुद्रता का भी अनुभव कैसे हो ? हमको किसी को भी अपनी क्षुद्रता का अनुभव नहीं होता, क्योंकि मापदंड कहां है, जिससे हम तोलें कि हम क्षुद्र हैं। जो मेंढक अपने कुएं के बाहर ही न गया हो, उसे कुआं सागर दिखाई पड़े तो कुछ गलत तो नहीं है, बिलकुल तर्कयुक्त है। तो मेंढक जब सागर के किनारे जाएगा तभी अड़चन आएगी। कहते हैं न, कि ऊंट जब तक पर्वत के पास न पहुंचे तब तक अड़चन नहीं होगी, क्योंकि तब तक वह खुद ही पर्वत है। पर्वत के करीब पहुंचकर पहली दफा तुलना पैदा होती है।

अर्जुन की घबड़ाहट तुलना की घबड़ाहट है। पहली दफा बूंद सागर के निकट है। पहली दफा 'न कुछ' 'सब कुछ' के सामने खड़ा है। पहली दफा 'सीमा' 'असीम' से मिल रही है। तो घबड़ाहट है। जैसे नदी सागर में गिरती है तो घबड़ाती होगी अज्ञात में, अनजान में, अपरिचित में, प्रवेश हो रहा है और ओर-छोर मिट जाएंगे, नदी खो जाएगी।

जिब्रान ने लिखा है—कि जब नदी सागर में गिरती है तो लौटकर पीछे जरूर देखती है। रास्ता जाना-माना परिचित था। अतीत, स्मृति। भविष्य, अपरिचित अनजान। यह अर्जुन ऐसी ही हालत में खड़ा है। जहां मिट जाएगा पूरा। रत्ती भी नहीं बचेगी और अब तक अपने को जो समझा था, वह कुछ भी नहीं साबित हुआ, क्षुद्र निकला और विराट सामने खड़ा है। इसलिए भयभीत भी हो रहा है और हर्षित भी हो रहा है। नदी जब सागर में गिरती है, तो अतीत खो रहा है इससे भयभीत भी होती होगी और अज्ञात मिल रहा है इससे हर्षित भी होती होगी। तो नदी नाचती हुई गिरती है। उसके पैर में भय का कम्पन भी होता होगा और आनन्द की पुलक भी होती है, क्योंकि अब विराट से एक होने जा रही है।

जिस दिन गेटे मर रहा था, तो कहते हैं, वह आंख खोलकर देखता था बाहर, फिर आंख बन्द कर लेता था; फिर आंख खोलकर बाहर देखता था, फिर आंख बन्द कर लेता था। किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो ?

तो गेटे ने कहा—मैं देख रहा हूं उस दुनिया को, जो छूट रही है और आंख बन्द करके देख रहा हूं उस दुनिया को, जो आ रही है। और मैं दोनों के बीच बड़ा खिंचा हुआ हूं। जो छूट रहा है, वह व्यर्थ था। लेकिन फिर भी उसके साथ मेरा लगाव हो गया है। जो मिल रहा है सार्थक है, लेकिन अपरिचित है, भय भी लगता है पता नहीं क्या होगा परिणाम !

अर्जुन कह रहा है :

"हर्षित भी हो रहा हूं और मेरा मन अति भय से व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव ! आप अपने चतुर्भुज रूप को ही ले लें। हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न हो जाएं, वापिस लौट आएं, सीमा में खड़े हो जाएं, असीम को तिरोहित कर दें। इस असीम से मन कंपता है।

और हे विष्णु ! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं। इसलिए हे विष्णु ! हे सहस्त्रबाहो ! आप उसी चतुर्भुज रूप से युक्त हो जाइए।"

यह हमें मन की एक और गतिविधि समझ लेनी चाहिए। जो न हो मन उसकी मांग करता है। जो मिल जाए तो जो नहीं हो जाता है, मन उसकी मांग करने लगता है। अर्जुन खुद ही कहा था कि मुझे दिखाओ अपना विराट रूप, असीम हो जाओ। अब तुम्हें देखना चाहता हूं, अनुभव करना चाहता हूं। अब सीमा से मेरी तृप्ति नहीं। अब तो मैं पूरा का पूरा, जैसे तुम हो अपने नग्न सत्य में वैसे ही निर्वस्त्र, तुम्हें तुम्हारी पूरी नग्नता में, सत्यता में देख लेना चाहता हूं।

यही अर्जुन की मांग थी, यह उसकी ही प्रार्थना थी। और अब देख कर वह कह रहा है वापिस लौट आओ—अपने पुराने रूप में खड़े हो जाओ। अब तो वही ठीक है—तुम्हारे चार हाथों वाला वह रूप। उसी में तुम वापिस आ जाओ, प्रसन्न हो जाओ।

जो खो जाता है, हम उसकी मांग करने लगते हैं। जो मिल जाता है, वह हमें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। कुछ भी मिल जाय तो हमें डर लगता है। पीछे लौटना चाहते हैं। आगे जाना चाहते हैं। मगर जो मिल जाय, उसके साथ राजी रहने की हमारी हिम्मत नहीं है।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है एक गीत, कि खोजता था परमात्मा को अनन्त-अनन्त कालों से। और बड़ा बेचैन रहता था, और बड़ा रोता-चिल्लाता था, और बड़ी तपश्चर्या करता था, और कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी शक्ल भी दिखाई पड़ती थी। जब तक वहां पहुंचता था तब तक वह दूर निकल जाता था। बड़ी व्याकुलता थी, मिलन का बड़ा आग्रह था। रोता-तड़पता, छाती पीटता भटकता था। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि उसके दरवाजे पर ही पहुंच गया। सीढ़ियां चढ़ गया, दरवाजे पर तख्ती लगी थी कि यही है उसका मकान, जिसकी तलाश थी। हाथ में सांकल लेकर दरवाजे की...जन्मों-जन्मों की प्यास पूरी होने के करीब थी...ठोंकने ही वाला था सांकल कि तभी मन ने कहा कि जरा सोच ले, अगर परमात्मा मिल ही गया तो फिर तू क्या करेगा? फिर तू क्या करेगा? अब तक तू उसको खोजता था और वह आखिरी खोज है और अगर मिल ही गया फिर तू क्या करेगा? फिर तेरे होने का क्या अर्थ है?

रवीन्द्रनाथ ने बड़ी मीठी कविता लिखी है। लिखा है कि धीरे से सांकल मैंने छोड़ दी कि कहीं आवाज न हो जाय, कहीं वह बाहर ही न आ जाय, कहीं वह आकर आलिंगन में ही न ले ले कि आ बहुत दिन से खोजता था अब मिलन हो जाय। जूते हाथ में निकाल लिए कहीं सीढ़ियों से लौटते वक्त आवाज न हो जाय और फिर मैं जो भागा हूं, तो मैंने लौटकर नहीं देखा।

अब मैं फिर खोज रहा हूं। अब मैं पूछता हूं लोगों से कि कहां है उसका मकान और मुझे उसका मकान पता है। और अब मैं जगह-जगह गुरुओं से पूछता हूं कि तुम्हारे चरण में आया हूं, रास्ता बताओ और मुझे उसका रास्ता पता है। और कभी भूल-चूक से भी कभी उसके घर के पास से मैं नहीं गुजरता हूं; क्योंकि अगर वह मिल ही जाय तो फिर...!

अर्जुन की भी यही हालत है। वह दरवाजे के भीतर घुस गया है। उसने कुण्डी बजा दी। अब परमात्मा मिल गया, अब वह कह रहा है कि नहीं, वापिस। फिर मुझे खोजने दो, फिर तुम अपनी सीमा में खड़े हो जाओ, ताकि फिर मैं असीम को खोजूं। अब तुम फिर मुस्कराओ। अब तुम फिर गदा हाथ में ले लो। अब तुम चतुर्भुज हो जाओ। तुम वही हो

जाओ। क्योंकि तुम तो मुझे मिटाए दे रहे हो, अब मेरा कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

आपको ख्याल में नहीं है। जो लोग दूर तक सोचते हैं, उनके ख्याल में है। रवीन्द्रनाथ ने बड़ा गहरा व्यंग किया है। बर्टेन्ड रसेल ने अपने एक वक्तव्य में ठीक यही बात कही है। रसेल ने कहा है कि मैं हिन्दुओं के मोक्ष से बहुत डरता हूं। मुझे सोचकर ही बात भयावनी मालूम पड़ती है कि सच में है ? आपने सोचा नहीं कभी, इसलिए फिक्र नहीं है। रसेल कहता है कि मैं यह सोचकर ही बहुत भयभीत हो जाता हूं कि मोक्ष मिल जाएगा फिर क्या—देन व्हाट ? और बड़ी कठिनाई यह कि मोक्ष से संसार में वापिस नहीं आ सकते। संसार से तो मोक्ष में जा सकते हैं। एन्ट्रेन्स तो है, एक्जिट नहीं है। मोक्ष से वापिस नहीं लौट सकते, वहां से कोई दरवाजा नहीं कि जिससे निकल भागें—बाहर आ गए।

तो रसेल कहता है कि मोक्ष की बात ही घबड़ाती है—कि वहां न दुख होगा, न सुख होगा; परम शांति होगी ! लेकिन कितनी देर ? अनन्त काल तक ! अनन्त काल तक शांति ! शांति !! शांति !!! बहुत बोरडम, बहुत ऊब पैदा हो जाएगी। स्वाद में थोड़ी बदलाहट तो चाहिए ही आदमी को। थोड़ा दुख आता है, तो सुख में फिर मजा आ जाता है। थोड़ी अशांति होती है, तो शांति की फिर चाह पैदा हो जाती है। लेकिन वहां कोई विघ्न-बाधा ही न होगी। वहां एक-सुरा संगीत होगा, जिसमें कभी ऊंची-नीची तान न होगी। वहां 'स रे ग म प ध नि' नहीं होगा। वहां बस 'स, स, स, स, स, स, स' चलता रहेगा अनन्त काल तक। उसमें—रसेल कहता है—घबड़ा जाएगी तबीयत और निकलने का रास्ता नहीं है। और यहां तो प्रभु से प्रार्थना करते थे कि मोक्ष पहुंचा दो, फिर क्या करेंगे ? मोक्ष के बाद फिर कोई उपाय नहीं है। तो रसेल कहता है, इससे तो नरक भी बेहतर, उसमें से कम से कम बाहर तो आ सकते हैं और कम से कम कुछ मजा तो रहेगा; कुछ चीजें तो बदलेंगी; फिर संसार ही क्या बुरा है !

यह रसेल ठीक कहता है। अगर सोचेंगे तो घबड़ाहट होगी। लेकिन ऐसा नहीं है कि बुद्ध और महावीर और कृष्ण ने बिना सोचे यह बात कही है। अगर आप अपनी बुद्धि को लेकर मोक्ष में चले जाएंगे, तो वही होगा जो रसेल कह रहा है, क्योंकि बुद्धि द्वंद्व है। वह एक को नहीं सह सकती,

उसको दो चाहिए। लेकिन मोक्ष की अनिवार्य शर्त है—बुद्धि को दरवाजे पर छोड़ जाना। इसलिए वहां कोई कभी नहीं पहुंचता।

ध्यान रहे बोरडम के लिए बुद्धि जरूरी है। बुद्धि के नीचे भी बोरडम पैदा नहीं होती, बुद्धि के ऊपर भी बोरडम पैदा नहीं होती। आपने किसी गाय-भैंस को बोर होते हुए देखा है, कि भैंस बैठी है बोर हो गई, कि बहुत ऊब गई। वही घास रोज चर रही, वही सब रोज चल रहा है। भैंस को कोई ऊब नहीं है। क्यों? क्योंकि ऊब पैदा होती है बुद्धि के साथ। बुद्धि तो न करने लगती है—जो था, जो है, जो होगा इसमें। खोजने लगती है तो फिर भेद अनुभव होने लगता है। फिर कल भी यही भोजन मिला, आज भी यही मिला, परसों भी यही मिला, तो ऊब पैदा होने लगती है। भैंस को पता ही नहीं कि कल भी यही भोजन किया था। कल समाप्त हो गया। कल तो, बुद्धि संग्रहीत करती है। बुद्धि स्मृति बनाती है। भैंस जो भोजन कर रही, वह नया ही है, कल जो किया था, वह तो खो ही गया, उसका कोई स्मरण नहीं। कल जो होगा उसकी कोई खबर नहीं है, आज काफी है। इसलिए बुद्धि के नीचे भी कोई बोरडम नहीं है। कोई जानवर ऊबा हुआ नहीं है, जानवर बड़े प्रसन्न हैं। कोई आदमी के पार गया आदमी—बुद्ध, महावीर ऊबे हुए नहीं हैं। उनकी प्रसन्नता फिर प्रसन्नता है, क्योंकि जो बुद्धि हिसाब रखती थी, उसको वे पीछे छोड़ आए।

आदमी परेशान है जो भैंस और भगवान के बीच में है। इसलिए बड़ी तकलीफ है, वह ऊबा हुआ है। आदमी का अगर एक मात्र लक्षण, जो जानवर से उसे अलग करता है कोई खोजा जाय, तो वह बोरडम है। ऊब, हर चीज से ऊब जाता है। एक सुन्दर स्त्री के पीछे दीवाना है, मिली नहीं। मिल नहीं गई स्त्री कि ऊब शुरू हो गई। दो चार दिन में ऊब जाएगा। सब सौन्दर्य बासा पड़ जाएगा, पुराना पड़ जाएगा। एक अच्छे मकान की तलाश है, मिला नहीं कि दो चार आठ दिन में सब बासा हो जाएगा। एक अच्छी कार चाहिए, मिल गई, दो-चार-आठ दिन में बासी हो जाएगी, दूसरी कार नजर को पकड़ने लगेगी। बुद्धि तौलती है, ऊबती है। बुद्धि के नीचे भी ऊब नहीं, बुद्धि के पार भी नहीं।

रसेल ठीक कहता है। अगर बुद्धि को लिए ही कोई घुस जाएगा मोक्ष में, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन कोई घुस नहीं सकता,

इसलिए चिन्ता की कोई जरूरत नहीं।

अर्जुन ऐसी ही दिक्कत में पड़ा है। इसको दिखाई पड़ रहा है विराट। अब इसको याद आता है कृष्ण का वह प्यारा मुख, जिससे मित्रता हो सकती थी, जिसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता था, जिसे कहा जा सकता था—हे यादव! हे कृष्ण! अरे सखा! जिससे मजाक की जा सकती थी। उसको पकड़ने का मन होता है।

सारी दुनिया में यह बात विचारणीय बनी रही है कि आखिर भारत में हिन्दुओं ने परमात्मा की इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं, इतनी निराकार की बात करने के बाद। इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं? मुसलमानों को कभी समझ में नहीं आ सका कि उपनिषद् की इतनी ऊंचाई पर पहुंचकर भारत, जहां परम निराकार की बात है, फिर क्यों गांव-गांव, घर-घर में मूर्ति की पूजा कर रहा है?

इस सूत्र में उसका रहस्य है। इस मुल्क ने निराकार को देखा है। और जिन्होंने इस मुल्क में निराकार को देखा है, उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिए साकार मूर्तियां बना दीं, क्योंकि उन्हें पता है कि निराकार तो बहुत घबड़ा देता है अगर बिना तैयारी के कोई वहां पहुंच जाय। उसमें मिटने की तैयारी चाहिए। उसके पहले साकार ही ठीक है। उसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता है। उसका शादी-विवाह रचाया जा सकता है। उसको कपड़े-गहने पहनाये जा सकते हैं। वह कुछ गड़बड़ नहीं करता। उसके साथ तुम्हें जो करना हो तुम कर सकते हो। भोजन करवाओ तो करवाओ, लिटाओ तो लिटाओ, सुला दो, उठा दो, द्वार बन्द कर दो, खोल दो, जो करना हो।

परमात्मा को जिन्होंने विराट में झांका है, उन्होंने आदमी के लिए मूर्तियां निर्मित करवा दीं—क्योंकि उन्हें पता चल गया कि आदमी जैसा है अगर ऐसा ही सीधा विराट में खड़ा हो जाय, तो या तो विक्षिप्त हो जाएगा, घबड़ा जाएगा और या फिर खड़ा ही नहीं हो पाएगा, देख ही नहीं पाएगा, आंख ही नहीं खुलेगी।

इसलिए निराकार का इतना चिन्तन करने वाले लोगों ने भी साकार को हटाया नहीं, साकार को बने रहने दिया। कभी-कभी बहुत कन्ट्राडिक्टरी

लगता है ।

शंकराचार्य जैसा व्यक्ति, जो बिल्कुल शुद्ध निराकार की बात करता है । फिर वह भी मूर्ति के सामने नाचता रहता है, कीर्तन करता है । वह भी गीत गाता है मूर्ति के सामने । बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है; क्योंकि पश्चिम में जो लोग वेदान्त का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, यह कन्ट्राडिक्टरी है । यह शंकर के व्यक्तित्व में बड़ा विरोधाभास है । एक तरफ तो वेदान्त की इतनी ऊंची बात कि सब माया है और फिर इसी माया मिट्टी के बने हुए भगवान के सामने गीत गाना और नाचना और तल्लीन हो जाना । इस सूत्र में उसका रहस्य है ।

शंकर को तो पता है, जो उनको दिखाई पड़ा है । लेकिन उनके पीछे जो लोग आ रहे हैं अब वे उनके संबंध में भी समझ सकते हैं कि जो शंकर को दिखाई पड़ा है—यह अगर किसी को आकस्मिक रुप से दिखाई पड़ जाय, कहीं कोने से टूट पड़े कोई धारा और इसका अनुभव हो जाय, तो झेलना मुश्किल हो जाय—वह एम्पैक्ट, वह आकार तोड़ जाएगा । इसलिए मूर्ति को रहने दो, जब तक कि अमूर्ति के लिए तैयार न हो जाय व्यक्ति । तब तक चलने दो उसे अपने खेल-खिलौनों के साथ, जब तक कि वह इतना प्रौढ़ न हो जाय कि सब छोड़ दे ।

यह अर्जुन यही मांग कर रहा है कि तुम मूर्त बन जाओ, अमूर्त नहीं; और तुम्हारी मूर्ति वापिस ले आओ ।

इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर कृष्ण बोले—हे अर्जुन ! अनुग्रह पूर्वक मैंने अपनी योग शक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमा रहित विराट रूप दिखाया, जो कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया । यह बड़ा उपद्रव का वचन है, क्योंकि इसमें बड़ी उलझनें हैं । जो लोग गीता में गहन चिन्तन करते हैं, मनन करते हैं, उनको बड़ी कठिनाई होती है । तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया है, इसका क्या मतलब ? क्या अर्जुन पहला अनुभवी है, जिसने परमात्मा का विराट रूप देखा । यह बात तो उचित नहीं मालूम पड़ती । अनन्त काल से आदमी है । अनन्त सिद्ध पुरुष हुए हैं । अनन्त जाग्रत चेतनाएं हुई हैं । क्या अर्जुन पहला आदमी है :

यह अर्थ नहीं हो सकता इस वाक्य का। इस वाक्य का केवल एक ही अर्थ है और वह यह कि कृष्ण के द्वारा यह रूप दिखाया गया, यह पहली घटना है कृष्ण के द्वारा। मैंने पीछे कहा कि अगर कोई अर्जुन बनने को तैयार हो, तो यह विराट दिखाया जा सकता है।

एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मुझे तो पक्का पता नहीं है कि मैं अर्जुन हूं या नहीं; लेकिन आप कितने अर्जुनों को पहले दिखा चुके हैं। तो मैंने उनसे पूछा कि तुम पहले पुराने कृष्ण की फिक्र करो, कि कितने अर्जुनों को कृष्ण पहले दिखा चुके हैं ? एक को ही दिखा पाए; और यही पहला भी था और यही आखिरी भी, क्योंकि अर्जुन जैसा समर्पण अति अति कठिन है। उतना सहज-भाव से छोड़ देना गुरू के हाथों में अति कठिन है। उतना निसंदेह उतनी पूर्ण श्रद्धा से, उतने समग्र भाव से। यही अर्थ है इस सूत्र का, कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया है।

कृष्ण के संबंध में यह बात सच है कि कृष्ण ने इस रूप में, कृष्ण के रूप में, जिसे दिखाया, वह अकेला अर्जुन है और यह पहला कहा है, उन्होंने। लेकिन बाद में भी किसी दूसरे को नहीं दिखाया है, यह आखिरी भी है।

अर्जुन हो पाना अति कठिन है। इसे थोड़ा सोच लें। कृष्ण हो जाना इतना कठिन नहीं है जितना अर्जुन हो पाना कठिन है। तो जब मैं ऐसा कहूंगा, आपको थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। कृष्ण हो जाना उतना कठिन नहीं है, जितना अर्जुन होना कठिन है। बुद्ध, कृष्ण हो जाते हैं, महावीर, कृष्ण हो जाते हैं। लेकिन अर्जुन होना बड़ा कठिन है, क्योंकि कृष्ण होना तो स्वयं पर, स्वयं की श्रद्धा से होता है। अर्जुन होना स्वयं की दूसरे पर श्रद्धा से होता है, जो बड़ी जटिल बात है। स्वयं पर भरोसा रखना तो इतना कठिन नहीं है, क्योंकि हमारा भरोसा स्वयं पर होता ही है—थोड़ा कम-ज्यादा, यह बढ़ जाय। जिस दिन आदमी अपने में पूरे भरोसे से भर जाता है, उस दिन कृष्ण की घटना घट जाती है। यह तो सहज है, क्योंकि एक ही आदमी की बात है, अपने पर ही भरोसा करना है। लेकिन अर्जुन होना अति कठिन है, क्योंकि दूसरे पर ऐसे भरोसा करना है, जैसे वह मेरी आत्मा है और मैं उसकी परिधि हूं।

इसलिए अर्जुन को खोजना कृष्ण को भी मुश्किल पड़ा है। एक अर्जुन कृष्ण को उपलब्ध हुआ है। राम को कभी कोई ऐसा अर्जन उपलब्ध

हुआ, पता नहीं। बुद्ध को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। जीसस को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। उनके पास भी बहुत लोगों को घटनाएं घटी हैं लेकिन अर्जुन जैसी विराट अनुभव की घटना नहीं घटी। तो कृष्ण का यह कहना इस अर्थ में सार्थक है, कि इस प्रकार का समर्पण मुश्किल है, अति दुरूह है और इस प्रकार समर्पण हो, तो यह घटना घट सकती है।

"हे अर्जुन ! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्व-रूप वाला मैं, न वेद के अध्ययन से, न यज्ञों के करने से, न दान से, न क्रियाओं से, न उग्र तपों से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखे जाने योग्य शक्य हूं।

यह बड़ी गहरी और महत्वपूर्ण बात कही है। कहा है कि वेद के अध्ययन से भी यह नहीं होगा, यज्ञों के करने से भी यह नहीं होगा, दान से भी नहीं होगा, क्रियाओं से योग की भी नहीं होगा, उग्र तपों से भी यह नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? वेद के अध्ययन से क्यों नहीं होगा ! क्यों ? यहां कोई साधेगा तो नहीं होगा ! क्यों नहीं ? योग की क्रियाएं क्यों नहीं इस स्थिति में ले जा पाएंगी ? यह नहीं होगा इसलिए– कि वेद का अध्ययन हो, या यज्ञ हो, या योग की साधना हो—यह सारी की सारी प्रक्रियाएं स्वयं पर भरोसे से होती हैं। इनमें व्यक्ति अपना ही केन्द्र होता है। ये समर्पण के कोई प्रयोग नहीं हैं, ये सब संकल्प के प्रयोग हैं। और अर्जुन की घटना समर्पण से घटेगी, संकल्प से नहीं। कोई कितना ही योग साधे वो अर्जुन नहीं बन पायेगा, कृष्ण बन सकता है। इसे थोड़ा समझ लें। कितना ही योग साधे कृष्ण तो बन सकता है, इसलिए कृष्ण को महायोगी कहते हैं। वो बुद्ध बन सकता है, कोई भी इस जगह पहुंच सकता है। तो मैं अपने भीतर प्रयोग करता जाऊं अपनी ही शक्ति से तो एक दिन उस दिव्य का अनावरण कर लूंगा जो मुझमें छुपा है। लेकिन तब मैं अर्जुन नहीं रहूंगा, मैं कृष्ण हो जाऊंगा। अर्जुन दूसरी ही प्रक्रिया है। वो संकल्प नहीं, समर्पण है। वहां स्वयं खोज नहीं करनी, जिसमें खोज लिया है, उसके चरणों में अपने को छोड़ देना है। तो अर्जुन है, मीरा है, चैतन्य हैं—इनकी पकड़ दूसरी है। ये दूसरा उपाय है। जगत में दो तरह के मत हैं। एक—जो संकल्प से पायेंगे परमात्मा को; दूसरे—जो समर्पण से पायेंगे परमात्मा को। समर्पण में अपने को बिलकुल छोड़ देना है।

रामकृष्ण कहते थे, नदी को पार करने के दो ढंग हैं। एक तो है कि नाव को खेवो पतवार से—जो संकल्प है। और एक है कि प्रतीक्षा करो कि जब हवाएं अनुकूल हों, तब पाल बांध लो और नाव में चुपचाप बैठ जाओ, नाव खुद चल पड़ेगी। पाल में भरी हवाएं उसे ले जाने लगेंगी—ये समर्पण है। कृष्ण की हवा है, अर्जुन ने तो केवल पाल खोल दिये। अर्जुन खुद नहीं चला रहा है नाव हवा कृष्ण की है। बुद्ध खुद चला रहे हैं, पाल वगैरह नहीं हैं उनकी नाव पर; और पाल वगैरह वह पसन्द भी नहीं करते। मरते वक्त बुद्ध ने आनंद को कहा है—अपने पर ही भरोसा रखना, किसी और पर नहीं। स्वभावतः जिसने नदी को नाव को खेकर पार किया हो पतवारों से, यही कहेगा। एक है समर्पण—कि छोड़ दो नाव उस पर अनुकूल हवाओं के लिये, वो ले जाय पार या डुबा दे तो भी समझना कि वही किनारा है; या खुद अपने ही बल से नदी को पार कर लेना।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि न वेद के अध्ययन से, न यज्ञ के अनुष्ठान से, न योग की क्रिया से, न उग्र तपश्चर्या से ये हो सकता है अर्जुन, जो तुझे हुआ है। यह समर्पण से होता है।

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

मनन
जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक)

जिसमें प्रतिमास सन्त-महात्मा व विद्वानों के विचारों को संकलित कर ४० पृष्ठों में मन-मोहक चित्रों सहित दो रंगों में पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

मूल्य—१ प्रति : ५० पैसे, वार्षिक : ५ रुपये

प्राप्ति स्थान—

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई—१०

एक और आत्म कथ्य

थोड़ा आदर्श के आकाश से
यथार्थ की धरती पर उतर कर अपने को देखता हूं
तो पाता हूं—अभी मैं कितना विकृत हूं
इस उड़ान ने कितना भ्रम पैदा कर दिया है
अपने सम्बन्ध में सुखद भ्रमों का जाल निर्मित कर लेना
कठिन नहीं है
पर उससे मुक्त होकर अपने को
यथातथ्य रूप में स्वीकार कर लेना कितना कठिन है
मैं जिन अंधेरों में खड़ा हूं
जिन वासनाओं और वृत्तियों की छायाओं से घिरा हूं
वे अब दिखाई देने लगी हैं—
तो उन्हें अस्वीकार भी कैसे करूं ?
अपने को आध्यात्मिक मान लेने से
वे अंधेरे तनिक भी न मिटे
वे अधिक घने ही हुए हैं
और अब मैं उनकी परिणति की भयंकरता से ही कांपने लगा हूं
हे परम कृपालु !
मुझे वह शक्ति दे
जिससे मैं इन अंधेरों में झांकने का साहस कर सकूं
मेरे वे गीत झूठे हैं
जिनमें मेरे प्रकाशमय व्यक्तित्व की सूचनाएं हैं
ये अंधेरे ही सच्चे हैं।

□ *स्वामी योग प्रीतम*
राजकीय महाविद्यालय,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

स्वयं होना ही प्रकृति के अनुकूल होना है

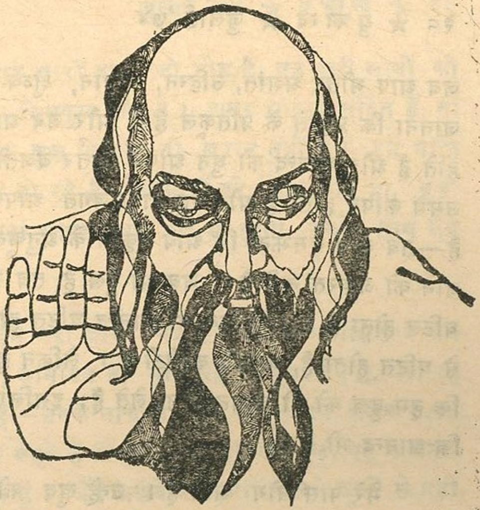

● भगवान रजनीश

△

लाओत्से के ताओ-तेह-किंग पर चलने वाली प्रवचन-माला के अन्तर्गत बम्बई में १ दिसम्बर १९७२ को एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान रजनीश ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा और अद्वितीय है और जीवन के सम्यक विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति का यात्रा-पथ भी अनूठा और अलग होना चाहिए।

—संपादक

▽

एक मित्र ने पूछा है: हम प्रकृति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल, यह कैसे जानें?

इसे जानने में कठिनाई नहीं होगी। जब आप बीमार होते हैं, तब कैसे जानते हैं कि बीमार हैं? और जब आप स्वस्थ होते हैं, तब कैसे जानते हैं कि स्वस्थ हैं? क्या उपाय है आपके पास जानने का? जब आप बीमार होते हैं, तब पीड़ा में होते हैं। और जब आप स्वस्थ होते हैं, तब प्रफुल्लित होते हैं। ठीक आत्मिक तल पर भी बीमारी और स्वास्थ्य घटित होते हैं।

जब आप भीतर अशांत, उद्विग्न, परेशान, क्षुब्ध होते हैं, संतप्त होते हैं—तो जानना कि प्रकृति के प्रतिकूल हैं। और जब आप भीतर आनन्द में खिले होते हैं और आनन्द की धुन आपके भीतर बजती होती है और रोआं-रोआं उसमें कंपित होता है और यह सारा जगत आपको स्वर्ग मालूम पड़ने लगता है—तब आप समझना कि आप प्रकृति के अनुकूल हैं। किसी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत नहीं है। जब भी दुख है, तब भी वह प्रतिकूल होने से ही घटित होता है। और जब भी आनन्द घटित होता है, तो वह अनुकूल होने से घटित होता है, आनन्द कसौटी है। लेकिन हम सब इतने दुख में जीते हैं कि हम दुख को ही जीवन मान लेते हैं; इसलिए हमें पता ही नहीं चलता कि आनन्द भी है।

मेरे पास लोग आते हैं। उन्हें खुद कोई आनन्द का अनुभव नहीं हुआ है; वह दूसरे के आनन्द में भी विश्वास नहीं कर सकते। एक बहिन ने परसों आकर मुझे कहा कि यह भरोसे योग्य नहीं है कि कीर्तन में दो मिनट में लोग इतने आनंदित होकर नाचने लगते हैं, यह भरोसा नहीं होता है। स्वभावतः जो कभी भी नाचा न हो आनन्द में, उसे भरोसा कैसे होगा! जो नाच ही न सकता हो, जिसके भीतर आनन्द की कोई पुलक ही पैदा न होती हो, उसे भरोसा कैसे होगा! निश्चित ही उसको लगेगा कि यह कोई तैयार किया हुआ खेल है, कोई नाटक है, ये लोग शायद आयोजित हैं, जो बस नाचना शुरू कर देते हैं, ऐसा कहीं हो सकता है! जो आदमी चालीस-पचास साल में कभी आनंदित न हुआ हो, वह कैसे मान ले कि दो मिनट में कोई आनन्द से भर सकता है!

आनन्द का मिनटों और वर्षों से कोई सम्बन्ध है? अगर दो मिनट में नहीं भर सकते, तो दो वर्षों में कैसे भर जाइएगा? और अगर दो वर्षों में भर सकते हैं, तो दो मिनट में बाधा क्या है? समय का क्या सम्बन्ध है आनन्द से! कोई भी सम्बन्ध नहीं है। लेकिन अनुभव ही न हो, तो क्या होगा? तो मैंने उस बहिन से पूछा कि तूने कभी आकर कीर्तन करके नाच कर देखा? तो उसने कहा कि नहीं, मैंने उससे कहा कि नाचकर देख, आकर देख। शायद तुझे भी हो जाए, तो तुझे पता चले।

हम आनन्द से भी भयभीत हैं। क्योंकि हमारे चारों तरफ दुखी लोगों का समाज है; उसमें आनंदित होना मेलएडजस्ट कर देता है; उसमें

दुखी होना ही ठीक है। हमारे चारों तरफ जो भीड़ है, वह दुखी लोगों की है उसमें आप भी दुखी हैं तो बिलकुल ठीक है। अगर आप आनंदित हैं, तो लोगों को शक होने लगेगा कि कुछ दिमाग तो खराब नहीं है। इस भांति हंस रहे हैं, इस भांति प्रसन्न हो रहे हैं! बीमारों की जहां भीड़ हो, दुखी लोगों का जहां समूह हो, वहां आपका भी दुख में होना उनके साथ एक संगति बनाये रखता है।

इसलिए बच्चों को हम बड़ी जल्दी गंभीर करने की कोशिश में लग जाते हैं। बच्चे प्रफुल्लित हैं, आनंदित हैं, नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, खेल रहे हैं। हमें बड़ी बेचैनी होती है—उनके नाच से, कूद से। आप अखबार पढ़ रहे हैं तो अपने बच्चे से आप कहते हैं कि बन्द कर यह शोरगुल, यह नाचना-कूदना; मैं अखबार पढ़ रहा हूं। जैसे अखबार पढ़ना नाचने-कूदने से बड़ी बात है! जैसे अखबार पढ़ना कोई ऐसा मामला है, जो नाचने-कूदने से ज्यादा कीमती है! बच्चे कमजोर हैं, वे इसलिए नहीं कह सकते कि बन्द करो यह अखबार पढ़ना और नाचो-कूदो। और जब तक वे ताकतवर होंगे, तब तक आप उनको बिगाड़ चुके होंगे और वे भी अखबार पढ़ रहे होंगे और अपने बच्चों को डांट रहे होंगे।

सभी मनुष्य प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं और अधिकतर मनुष्य प्रकृति के प्रतिकूल मरते हैं। हम सभी जन्म से प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं; लेकिन समाज, चारों तरफ का ढांचा हमें मरोड़ कर गंभीर बना देता है। और जो आदमी गम्भीर नहीं हो जाता है, उसे हम बड़े हो जाने पर भी कहते हैं कि तुम अभी बचकाने हो, चाइल्डिस हो; यह बचकानापन छोड़ो, गम्भीर बनो। हम उदास शकलें चाहते हैं। अगर आप किसी साधु-संत के पास जाएं और उसे खिलकर हंसते देख लें, तो आप दुबारा न जाएंगे। आप गम्भीर, रुग्ण चेहरे चाहते हैं। महात्मा और हंस रहा है, जरूर गड़बड़ है। आपकी दृष्टि में बुरा आदमी हंस सकता है; भला आदमी हंस नहीं सकता। भला आदमी का नैसर्गिक गुण रोना है। आप अपने संतों, महात्माओं की शकलें देखें, वे रोते हुए लोगों की भीड़ हैं। और जो जितने जोर से रो सकता है, वह उतना बड़ा महात्मा है। उनके रोएं-रोएं से उदासी टपक रही है; संसार के प्रति दुश्मनी टपक रही है। उनके चारों तरफ फूल खिले हुए नहीं दिखाई पड़ते हैं। लेकिन तभी आप आश्वस्त होते हैं। इसलिये

जो संन्यासी, जो साधु जितना ज्यादा परेशान दिखेगा, वह उतना आपको त्यागी मालूम पड़ेगा। नंगा खड़ा हो, धूप में खड़ा हो, भूखा मर रहा हो, उपवास कर रहा हो, शरीर हड्डी हो गया हो, वह उतना बड़ा आपको मालूम होता है। आप बड़े अजीब हैं, आपके मन में कहीं न कहीं दुखी लोगों को देखने में कुछ मजा आता है। इसलिए आप ख्याल करें, अगर महात्मा झोपड़ी में रहता हो, तो आप आसानी से उसके पैर पड़ सकते हैं। महात्मा महल में रहता हो, तो अड़चन की बात है। क्यों? महात्मा अगर स्वस्थ मालूम पड़ता हो, तो आपको लगेगा कि कुछ गड़बड़ है, गृहस्थ जैसा स्वस्थ मालूम पड़ रहा है। उसे हड्डी-हड्डी होना चाहिए; तब आपको लगेगा कि कोई त्यागी है। महात्मा कहीं भी सुख लेता हुआ मालूम पड़े, तो आपको अड़चन होगी। इसलिए जहां-जहां सुख है, वहां-वहां से आप महात्मा को तोड़ते हैं। भोजन वह ठीक से नहीं कर सकता है। सुन्दर स्त्री अगर उसके पास दिखाई पड़ जाए, तो आपको बहुत बेचैनी हो जाएगी। क्यों? आपका जहां-जहां सुख है, वहां से महात्मा दूर होना चाहिए। भोजन ठीक से न कर सके; सुन्दर स्त्री उसके पास न दिखाई पड़ सके। इसलिए महात्माओं को होमो सेक्सुअल समाज खड़ा करना पड़ा, समलिंगी समाज खड़ा करना पड़ा। कैथोलिक महात्मा हैं, तो पुरुष अलग रहते हैं एक मोनेस्ट्री में और स्त्रियां अलग रहती हैं दूसरी मोनेस्ट्री में। जैनों के महात्मा चलते हैं, तो साधु एक तरफ चलते हैं अलग, साध्वियां दूसरी तरफ चलती हैं अलग। उनको आप साथ भी ठहरने नहीं दे सकते हैं। आपको अपने महात्मा पर इतना भी भरोसा नहीं है। इतना डर क्या है?

जैन साध्वी अकेली नहीं चल सकती, पांच को चलना चाहिए साथ। निश्चित जैन शास्त्र निर्माण करने वाले लोग भली भांति समझ गए होंगे कि पांच औरतें जहां साथ हैं, वहां चार एक के ऊपर पहरा हैं। वे चार जो हैं, वे किसी को भी सुख न लेने देंगी, वे नजर रखेंगी, एक आंतरिक, बिल्ट इन, भीतरी इन्तजाम कर दिया आपने। पांच औरतों को साथ चला रहे हैं, वे किसी को सुखी नहीं होने देंगी। और एक दूसरे पर नजर रखेंगी कि कोई सुखी तो नहीं हो रही है। और स्त्री और पुरुष पास हों, तो ज्यादा सुखी हो सकते हैं, यह डर समाया हुआ है। क्योंकि आपका अनुभव क्या है सुख का? दो ही अनुभव हैं आपको सुख के। भोजन का और स्त्री का, या पुरुष का। दो ही सुख हैं। तो दोनों सुख से महात्मा को बिल्कुल तोड़ देना चाहिए।

तब फिर वह लगता है कि ठीक है, अब ठीक है। तो जितना मरा हुआ हो, उतना ठीक है। जिन्दा है, तो डर है, क्योंकि जिन्दगी के साथ डर है। हंस कैसे सकता है महात्मा? हंसने का मतलब? हंसने का मतलब कि अभी भी उसे जगत में या होने में रस है। हंसने का मतलब होता है कि रस है; इसलिए विरस होना चाहिए। उसकी सारी हंसी सूख जानी चाहिए। तो हम एक रुग्ण समाज में जी रहे हैं। हमारे रुग्ण समाज की रुग्ण धारणाएं हैं। और रुग्ण धारणाओं को हम एक दूसरे पर थोपते हैं।

बाप भी नहीं चाहता है कि बेटा सुखी हो, चाहे कहे कितना ही। कहता बहुत है कि तेरे सुख के लिए सब कर रहा हूं; लेकिन चाहता नहीं है कि बेटा सुखी हो। यह जरा कठिन लगेगा। क्योंकि बाप सोचेगा कि ऐसा तो कभी नहीं है, मैं तो चाहता हूं कि मेरा बेटा सुखी हो। आप कहते हैं, आप समझते भी हैं कि आप चाहते हैं; लेकिन जो करते हैं, उससे बेटा दुखी होगा। और आप कर भी वही सकते हैं जो कि आपके बाप ने आपके साथ किया है। नया सोचना बड़ी कठिन बात है। इसलिए हर बाप अपने बेटे के साथ वही करता है, जो उसके बाप ने उसके साथ किया है और वह ढांचा है। उस ढांचे को आप थोप देते हैं। लेकिन थोड़ा सोचिए, आप सुखी हैं? अगर आप सुखी नहीं हैं, तो एक बात तो पक्की समझ लीजिए कि आपका ढांचा किसी को भी सुखी नहीं कर सकता है। लेकिन यह कोई नहीं सोचता है। बाप यह नहीं सोचता है कि मैं सुखी नहीं हूं, तो मेरी धारणाओं के अनुसार चला हुआ मेरा लड़का कैसे सुखी हो जाएगा?

अगर मैं सुखी नहीं हूं, तो एक बात तो तय है कि मेरा ढांचा इसे न दूं; और कुछ भी हो। कम से कम दूसरे ढांचे में कोई संभावना तो होगी कि उसमें शायद सुखी हो जाए; लेकिन मेरे ढांचे में तो कोई सम्भावना नहीं है। लेकिन कोई सोचता नहीं है। आपको मजा ढांचा देने में आता है; लड़के को सुख मिलेगा या नहीं, यह सवाल नहीं है। आप लड़के को अपने अनुसार ढाल रहे हैं, इसमें आपको मजा आ रहा है। बड़ी अजीब बात है। आप दुखी हैं और बेटे को अपने ढांचे में ढाल रहे हैं। मेरे पास लोग आते हैं। वे मुझे तक सलाह देने आ जाते हैं; वे कहते हैं कि आप ऐसा करिए तो बहुत अच्छा होगा। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम्हारी सलाह से कम से कम तुम तो चले ही होते, और अगर तुम्हारे जीवन में आनन्द आ गया हो, तो ही मुझे सलाह

देते। वे कहते हैं कि नहीं, हमारे जीवन में तो कुछ नहीं आया; उसके लिए तो हम आपके पास आये हैं। तो मैं उनसे कहता हूं कि तुम्हारी सलाह संभाल कर रखो, और किसी को देना मत; क्योंकि तुम्हारी सलाह के तुम भी उदाहरण नहीं हो।

मुझे याद आता है, हेनरी फोर्ड एक दुकान में गया एक किताब खरीदने। वह जो किताब देख रहा था, वह किताब थी: हाउ टू ग्रो रिच, कैसे अमीर बन जाओ। हेनरी फोर्ड तो अमीर हो चुका था, फिर भी उसने सोचा कि शायद कोई और बातें इसमें हों। और तभी दूकानदार ने कहा कि फोर्ड महोदय, आप बड़े आनंदित होंगे, इस किताब का लेखक भी दूकान में भीतर है, वह कुछ काम से आया हुआ है, हम आपको उससे मिला देते हैं। उससे सारी बात बिगड़ गई। वह लेखक बाहर आया। हेनरी फोर्ड ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि यह किताब वापस ले लो, यह मुझे खरीदनी नहीं है। वह दुकानदार हैरान हुआ कि आप यह क्या कर रहे हैं, इस किताब की लाखों कापियां बिक चुकी हैं। फोर्ड ने कहा कितनी ही बिक चुकी हों, लेकिन लेखक को देख लिया अब किताब को क्या करूंगा? कोट फटा था और हाउ टू ग्रो रिच किताब लिखी है उन्होंने। हेनरी फोर्ड ने पूछा कि अपनी ही कार से आये हो, कि बस में आये हो? लेखक ने कहा, आया तो हूं बस में। तो हेनरी फोर्ड ने कहा कि मैं फोर्ड हूं, और कभी कार की जरूरत पड़े, तो मेरे पास आना, सस्ते में निबटा दूंगा; लेकिन अभी यह किताबें मत लिखो। क्योंकि जिस सलाह से खुद तुम कुछ न पा सके, उससे कोई और क्या पा सकेगा?

जिन्दगी बड़ी जटिल है। अगर आपको न मिला हो आनन्द, तो अपने बेटे को अपने ढांचा मत देना। अगर आपको न मिला हो आनन्द, तो अपनी सलाह किसी को मत देना; वह जहर है। उसी सलाह के आप परिणाम हैं। दूसरों ने आपके साथ ज्यादती की कि आपको ढांचा दे दिया; अब आप दूसरों के साथ ज्यादती मत करना कि उनको अपना ढांचा दे दें। इसीलिए हमें पता नहीं चलता है कि क्या है प्रकृति की अनुकूलता; क्योंकि प्रतिकूलता में ही हम बड़े होते हैं। मनुष्य का सारा का सारा संस्थान प्रतिकूल है। इसलिए लाओत्से कहता है कि निसर्ग के जितने अनुकूल हो सको, उतने अनुकूल हो जाना। लेकिन क्यों हो गया है प्रतिकूल आखिर?

इसे हम थोड़ा समझ लें। इसका पूरा शास्त्र है कि आखिर क्या कारण है कि आदमी प्रतिकूल हो गया है !

कारण है। हर व्यक्ति अनुकूल पैदा होता है। प्रतिकूल से ही पैदा होता है, इसलिए अनुकूल होगा ही। लेकिन हम किसी व्यक्ति को उसकी निसर्गता में स्वीकार नहीं करते हैं। हम उस पर आदर्श लादते हैं, हम लोगों से कहते हैं कि महावीर बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, कुछ न बनो, तो कम से कम विवेकानन्द बन जाओ। लेकिन आपको पता है कि महावीर दुबारा पैदा नहीं होते ? पच्चीस सौ साल में तो नहीं पैदा हुए; हालांकि कई लोगों ने समझाया अपने बेटों को कि महावीर बन जाओ। कोई आदमी जमीन पर दुबारा पैदा हुआ है, ऐसी आपको कोई खबर है ? कोई राम, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई कभी दुबारा पैदा हुआ है ?

हर आदमी अनूठा पैदा होता है। और हम आदर्श देते हैं उसको कुछ होने का कि तू यह हो जा। कठिनाई है मां-बाप की; क्योंकि उनको भी पता नहीं है कि घर में जो पैदा हुआ है, वह क्या हो सकता है ? किसी को भी पता नहीं है, अभी तो वह जो पैदा हुआ है उसको भी पता नहीं है कि वह क्या हो सकता है ? सारा जीवन अज्ञात में विकास है। तो मां-बाप की बेचैनी यह है कि कोई ढांचा क्या दें वे ? तो जो पहले लोग हो चुके हैं चमकदार, वे उनके ढांचे देते हैं कि तुम ऐसे हो जाओ। वह ढांचा फांसी बन जाता है और वह ढांचा ही प्रकृति के प्रतिकूल ले जाने का कारण हो जाता है। फिर हम ढांचे में ढाल कर व्यक्तियों को खड़ा कर देते हैं, वे फंसे हुए लोग हैं, जिनके चारों तरफ लोहे की जंजीरें हैं सख्त। उनमें से निकलना मुश्किल है। जब तक मनुष्यता यह स्वीकार न कर ले कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है और कोई किसी की कापी न हैं और न हो सकते हैं।

दो व्यक्ति समान नहीं हैं, हो भी नहीं सकते। होना भी नहीं चाहिए। अगर आप कोशिश करके राम हो भी जाएं, तो आप एक बेहूदा दृश्य होंगे, और कुछ भी नहीं। उनका होना तो एक बात है आपका होना तो सिर्फ एक नकल होगा। झूठे होंगे आप! वैसे होने का कोई उपाय नहीं है। कारण ? क्योंकि होने के लिए बड़ी कठिनाई है। कठिनाई क्या है ? यह नहीं कि वैसा होना बड़ा कठिन है। वे बिना कोशिश किये हो गए, इसलिए बहुत कठिन तो मालूम नहीं होता। या कि बुद्ध होना बहुत

कठिन है ? बुद्ध बिना कोशिश किए हो गए; कोई बहुत कठिन नहीं है। कठिनाई दूसरी है।

एक-एक व्यक्ति इतिहास, समय और स्थान के ऐसे अनूठे बिन्दु पर पैदा होता है कि उस बिन्दु को दुबारा नहीं दोहराया जा सकता। वह बिन्दु एक दफा आ चुका; अब कभी नहीं आएगा। इसलिए कोई आदमी दोहर नहीं सकता। इसलिए सब आदर्श खतरनाक हैं।

फिर हम किसी व्यक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं। हम सबका अहंकार है भीतर; वह सिर्फ अपने को स्वीकार करता है और अपने अनुसार सबको चलाना चाहता है। इस दुनिया में सबसे खतरनाक और अपराधी लोग वे ही हैं, जो अपने अनुसार सारी दुनिया को चलाना चाहते हैं। इनसे महान अपराधी खोजना कठिन है; भले ही आप उन्हें महात्मा कहते हों। आपके कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

जब भी मैं कोशिश करता हूं कि किसी को मेरे अनुसार चलाऊं, तभी मैं उसकी हत्या कर रहा हूं। मेरे अहंकार को तृप्ति मिल सकती है कि मेरे अनुसार इतने लोग चलते हैं; लेकिन मैं इन लोगों को मिटा रहा हूं। इसलिए वास्तविक धार्मिक गुरु आपको आपके निसर्ग की दिशा बताता है; वह आपको अपने अनुसार नहीं चलाना चाहता है। वह आपको कहता है कि आप अपने अनुसार हो जाएं और इस होने के लिए जो भी त्यागना पड़े और जो भी मुसीबत झेलनी पड़े, वह झेल लें। क्योंकि सब मुसीबतें छोटी हैं, अगर उस आनन्द का पता मिल जाए, जो स्वयं के अनुसार होने से मिलता है। सब मुसीबतें छोटी हैं; इनकी कोई कीमत नहीं है, सब मुसीबतें आसान हैं। और आप दूसरे के अनुसार बनने की कोशिश करते रहे, तो आप और दुखी, और दुखी, और दुखी होते चले जाएंगे। कभी आपको आनन्द की कोई झलक न मिलेगी।

आनन्द की झलक का मतलब ही है कि मेरी प्रकृति और विराट की प्रकृति के बीच कोई ताल-मेल खड़ा हो गया, कोई हारमनी हो गई; अब दोनों एक लय में बद्ध होकर नाच रहे हैं। मेरा हृदय विराट के हृदय के साथ लयबद्ध हो गया; मेरा स्वर और विराट का स्वर मिल गया; अब दोनों में जरा भी फासला नहीं है। तो मुझे अपने ही अनुसार, अपने ही जैसा होना चाहिए। और इसके लिये मुझे कोई भी सहायता नहीं देगा। सब इसमें बाधा डालेंगे; क्योंकि सब चाहेंगे कि उनके अनुसार हो जाऊं।

मां-बाप चाहते हैं, फिर स्कूल में शिक्षक चाहते हैं, वे चाहते हैं; फिर नेता हैं, फिर महात्मा हैं, फिर पोप हैं, शंकराचार्य है, वे चाहते हैं कि मेरे अनुसार हो जाओ। इस दुनिया में आपके चारों तरफ जैसे बहुत से गिद्ध आप पर टूट पड़े हों; वे सब आपको अपना भोजन बनाना चाहते हैं। इसमें आप भूल ही जाते हैं कि आप सिर्फ अपने जैसे होने के लिए ही पैदा हुए हैं। पर एक बात तो पक्की है कि आप दुखी होते रहते हैं। उस दुख को ही पहचानें। अगर आप दुखी हैं, तो समझ लें कि यह पक्की है बात कि आप निसर्ग के प्रतिकूल चल रहे हैं। दुख काफी सबूत हैं। और जब आप दुखी होते हैं, तो पता है आप क्या करते हैं? आप जब दुखी होते हैं, तो आप वही भूल दोहराते हैं जिसके कारण आप दुखी हैं। तब आप किसी से पूछने जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए, जिस पर मैं चलूं और मेरा दुख मिट जाए। वह आपको रास्ता बताएगा कोई न कोई। पर वह रास्ता उसका होगा, और हो सकता है कि उस पर चलने से उस आदमी का दुख भी मिट गया हो। मगर वह रास्ता उसका होगा। और दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नहीं हो सकता है। आपको अपना रास्ता खोजना पड़ेगा। आप दूसरों के रास्तों से परिचित हो लें, इससे सहयोग मिल सकता है। आप दूसरों के रास्तों को पहचान लें, इससे आपके रास्ते के खोज में सहारा मिल सकता है। लेकिन, किसी दूसरे के रास्ते पर अन्धे की तरह चले अगर आप, तो आपको अपना रास्ता कभी भी नहीं मिलेगा।

कितने लोग महावीर के पीछे चले; लेकिन एक भी महावीर नहीं हो सका। और कितने लोग बुद्ध के पीछे चले और एक भी बुद्ध नहीं हुआ। क्या कारण है? इतना अपव्यय हुआ है शक्ति का, कारण क्या है? कारण एक है: आपका रास्ता किसी दूसरे का रास्ता नहीं है, और किसी दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नहीं है। आत्माएं अद्वितीय हैं, और हर आत्मा का अपना रास्ता है। तो क्या करें? अपने दुख को समझें, अपने दुख के कारण खोजें कि मेरे दुख का कारण क्या है। और उस कारण से हटने की की कोशिश करें; रास्ता मत खोजें; दूसरे से जाकर मत पूछें। क्या है दुख का कारण आपका? मेरे पास न मालूम कितने लोग आते हैं। उनके दुख का कारण इतना साफ है कि हैरानी होती है कि उनको दिखाई क्यों नहीं पड़ता। ऐसा लगता है कि वे देखना ही नहीं चाहते हैं। और अगर उन्हें कोई रास्ता भी बताया जाए, तो उस रास्ते पर चलकर भी वे दुख का कारण तो

साथ ही ले जाते हैं। अधिक लोगों में दुख का कारण अहंकार है। इतना साफ है; लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता। मेरे पास लोग आते हैं, उनको मैं कहता हूं कि यह अहंकार ही दुख दे रहा है, तो वे कहते हैं कि छूटने का कोई रास्ता बताइए। उनको कोई रास्ता बता दूं तो वे उस रास्ते पर चलेंगे भी, मगर वह जो बीमारी थी, उसको साथ ही ले आएंगे। मैं उनको कहता हूं कि चलो, एक संन्यास में छलांग लगा लो। वे संन्यास में भी छलांग लेते हैं; लेकिन तब संन्यासी का अहंकार उनको पकड़ लेता है। तब वे मानते हैं कि जिन्होंने संन्यास नहीं लिया, वे उनसे छोटे हैं, और जिन्होंने ले लिए वे बड़ी ऊंचाई पर पहुंच गये। वे गैर-संन्यासी को ऐसे देखते हैं कि जैसे कि सहानुभूति से किसी दुखी-पीड़ित आदमी को देखा जाता है : कि ठीक है, भटको जब तक भटकना है; हम पहुंच गए।

यह उनकी बीमारी थी; इसे ही छोड़ने को कहा था कि एक छलांग लगा लो। और ये बीमारी को साथ ले आये। फिर दस-पचास संन्यासी इकट्ठे हो जाते हैं, तो छोटे-बड़े का सवाल शुरू हो जाता है फिर उनमें कलह शुरू हो जाता है, फिर पोलिटिक्स शुरू हो जाती है फिर वे दल बना लेते हैं, फिर एक-दूसरे की काट-पीट शुरू कर देते हैं। उन्होंने एक संसार बना लिया—अल्टरनेटिव, छोटा सा। सौ आदमी के भीतर सारी वह राजनीति आ जाती है, जो दिल्ली में चलती हो, जो वाशिंगटन में चलती हो। कोई फर्क नहीं पड़ता है। कौन कहां बैठा है? कौन, कौन-सा काम कर रहा है? किसको कितनी प्रतिष्ठा मिल रही है? वह सारी बीमारी साथ खड़ी है। यह कठिनाई है। बीमारी को हम देखना नहीं चाहते हैं। या फिर मामला ऐसा है कि जैसे कि खाज किसी को हो जाती है, वह जानता भी है कि खुजलाने से दुख होता है लेकिन खुजलाने में रस भी आता है। अकेला दुख होता, तो खाज को कोई भी न खुजलाता। खाज में दोहरा उपद्रव है, मजा भी आता है खुजलाने में। तो जिस दुख में मजा आता है, उससे बचना मुश्किल हो जाता है। आपको अहंकार में मजा भी आता है, वह खाज है। फिर दुख भी होता है। जब दुख होता है, तो आप हाथ जोड़कर आ जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए। जब चमड़ी बिलकुल उखड़ जाती है, लहूलुहान हो जाता है और खून बहने लगता है, तो आप कहते हैं कि कोई रास्ता बताइए, बहुत दुख पा रहा हूं। लेकिन थोड़ी देर में चमड़ी भीतर फिर ठीक हो जाएगी, खून बन्द हो जाएगा; फिर आपके भीतर सरसराहट शुरू होगी

कि थोड़ा खुजा कर देखें, बड़ा मजा आता है।

खाज है अहंकार। वह अकेला दुख नहीं है, शुद्ध दुख नहीं है। उसमें थोड़ा रस भी मिश्रित है; वही रस पीछा करता है। इसलिए जहां भी आप जाते हैं, वहां वह रस पीछा करता है। अगर आप दुख पा रहे हों, तो समझना कि अहंकार वहां है। अगर आप दुख पा रहे हों, तो समझना कि आप प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हैं। और प्रतिकूल चलने के दो ढंग हैं। शरीर को भोजन चाहिए। आप दो ढंग से शरीर को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इतना खा लें कि शरीर के लिए झेलना मुश्किल हो जाए; दुख शुरू हो जाए। यह प्रतिकूल चले गए। या भूखे रह जाएं, बिलकुल न खाएं, तो भी दुख शुरू हो जाएगा। तो ध्यान रखना, प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं।

अनुकूल होने का एक उपाय है, और प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं। और आदमी का मन ऐसा है कि एक प्रतिकूलता से दूसरी पर चले जाने में उसे सुविधा होती है; क्योंकि वह भी प्रतिकूल है। इसलिए यह ज्यादा भोजन करने वाले लोग अक्सर उपवास करने को राजी हो जाते हैं। असल में जिस आदमी ने सम्यक भोजन किया है, वह उपवास की मूढ़ता में पड़ेगा ही नहीं। क्यों उपवास करेगा? जिसने ठीक भोजन किया है, उतना ही भोजन किया है, जितना शरीर को जरूरत थी, उसे उपवास करने का कोई सवाल ही नहीं उठता। सिर्फ अति भोजन किया है, तो फिर अनाहार में उतरना पड़ेगा। और जो अति भोजन करता है, वह तत्काल अनाहार के लिए राजी हो जाता है। इसको आप समझ लें। अति भोजन करनेवाले को अगर कहें कि कम भोजन करो, तो यह जरा कठिन है। कहें, बिलकुल न करो, तो यह हो सकता है। अगर एक आदमी सिगरेट पीता है और उससे कहें कि दस की जगह पांच पीओ, तो वह कहेगा कि यह जरा कठिन है; बिलकुल न पीऊं, यह हो सकता है। क्यों? क्योंकि अति की आदत है; या तो पीऊंगा दिन भर, या फिर बिलकुल न पीऊंगा। इन दोनों में से चुनाव आसान है। लेकिन मध्य में रुकना कठिन है। मध्य में रुकने का मतलब है कि आप प्रकृति के अनुकूल होना शुरू हो गए हैं। प्रकृति है मध्य, संतुलन, संयम। ध्यान रखना, हमने संयम का अर्थ ही खराब कर दिया है। संयम का हमारा मतलब होता है—दूसरी अति। अगर एक आदमी उपवास करता है, तो हम कहते हैं कि बड़ा संयमी है। लेकिन असंयमी है वह आदमी उतना ही, जितना ज्यादा खानेवाला असंयमी है। और संयम सूत्र है निसर्ग

के अनुकूल हो जाने का।

आपके हर दुख में आपका हाथ है और रस है। रस को आप नहीं देखते, आप सिर्फ दुख को देखते हैं। तो आप कभी नहीं छूटेंगे; रस को भी देखें। रस से छूटेंगे तो दुख से छूटेंगे। जिस आदमी को खाज खुजलाने में रस है, उससे कितना ही कहो कि दुःख है, वह नहीं सुनेगा। वह भी मानता है कि दुख है, वह भी दुख झेल चुका है। इसलिए पहले उसको समझाओ कि रस भी है, और रस को समझ लो ठीक से, और रस लेना चाहते हो तो यह दुख की कीमत चुकानी पड़ेगी; फिर दुख से बचने की बात मत पूछो। लोग मुझसे आकर कहते हैं कि बड़ी अशांति है। मैं उन्हें कारण बताता हूं, तो वे कहते हैं कि वह कारण तो छोड़ना मुश्किल है। आप तो अशांति हटाने का उपाय बता दें। इसलिए लोग झूठी तरकीबों में पड़ जाते हैं।

एक आदमी है, वह धन के पीछे पागल है। वह कहता है कि जब तक करोड़ों न हो जाएं उसे चैन नहीं मिलनेवाली है। और करोड़ों की इस दौड़ में उसका मन अशांत हो जाता है। वह मेरे पास आता है, वह कहता है कि बड़ी अशांति है, कोई मन्त्र बता दें, कोई माला दे दें कि मैं माला फेर कर शांत हो जाऊं। मैं उससे पूछता हूं कि क्या माला न फेरने से तुम अशांत हुए हो कि माला फेरने से शांत हो जाओगे! तुम्हारी अशांति का क्या सम्बन्ध है माला से? माला का हाथ ही कहां है? यह जो तुम धन की पागल दौड़ में पड़े हो, यह तुम्हारी अशांति है। वह कहता है कि इसको तो छोड़ना मुश्किल है, आप तो कोई दूसरी विधि बता दें। वह विधि चाहता है। उसका मतलब यह है कि वह जो खाज के खुजलाने का रस है, वह तो बचा रहे और खाज के खुजलाने में से जो दुख होता है, वह न हो। आप कोई माला बता दें कि खुजला कर माला फेरने लगूं, ताकि वह जो दुख है, वह न हो। दुख कैसे नहीं होगा? उस दुख का कारण है और मन्त्रों से वह कारण मिटने वाला नहीं है। कोई मन्त्र आपके कारण को नहीं मिटा सकता। इसलिए मन्त्र तो दुनिया में बहुत हैं और मन्त्र देने वाले भी बहुत हैं, और आपके दुख का कोई अन्त नहीं है।

फिर मन्त्र देने वाले भी समझ जाते हैं कि आप खाज को खुजलाना चाहते हैं, तो वे दोहरी बातें कहते हैं। महेश योगी अपने साधकों को कहते हैं कि इस मन्त्र से तुम्हें आध्यात्मिक शांति तो मिलेगी ही, भौतिक सम्पन्नता भी मिलेगी। वे यह कह रहे हैं कि इससे दुख भी मिटेगा और खुजलाने का

मजा भी रहेगा। पश्चिम में महेश योगी के विचार के प्रभाव का बुनियादी कारण यह है। क्योंकि वे कहते हैं कि इससे भौतिक सम्पन्नता भी मिलेगी, इससे धन-समृद्धि भी मिलेगी। स्वभावत: धन तो आप चाहते हैं, और शांति भी चाहते हैं। अगर कोई कहता है कि धन की दौड़ में शांति नहीं मिलेगी, तो आप कहेंगे कि फिर शांति रहने दो; अभी धन की दौड़ कर लें और फिर जब धन पास होगा, तो शांति भी खरीद लेंगे। जिसकी बुद्धि धन पर टिकी होती है वह सोचता है, हर चीज धन से खरीदी जा सकती है, शांति भी खरीद लेंगे। कुछ चीजें हैं जो धन से नहीं खरीदी जा सकतीं। और कुछ चीजें हैं जो धन की दौड़ में कभी फलित ही नहीं हो सकती हैं। कुछ चीजें हैं जिनसे यश नहीं खरीदा जा सकता है। और कुछ चीजें हैं जो यश चाहने वाले को कभी नहीं मिल सकतीं। क्योंकि उसी चाह में उसका विरोध है।

एक मेरे मित्र हैं। एक राज्य के वे मंत्री थे। अब फिर मंत्री हो गए हैं। जब वे मंत्री नहीं रहते हैं, तब मेरे पास आते हैं। जब वे मन्त्री हो जाते हैं, तब वे मुझे भूल जाते हैं। जब वे मंत्री नहीं रहते हैं, तब वे मेरे पास आते हैं कि शांति का कोई उपाय बताइए। मैं उनसे पूछता हूं कि अशांति क्या है, यही न कि अभी मंत्री आप नहीं हैं? तो इसके मैं क्या उपाय बताऊं? और मेरा उपाय ऐसा है कि फिर आप कभी मंत्री न हो पाएंगे। तो मै उनसे कहता हूं कि आप तय कर लें कि अगर शांत ही होना है, तो राजनीति छोड़ देनी पड़ेगी। क्योंकि वह खाज है और उसमें खुजलाना जारी रखना पड़ेगा। और राजनीति ऐसी खाज है कि आप न भी खुजलाएं, तो दूसरे आपको खाज को खुजलाते हैं। बड़ी कठिनाई है। आप चैन से बैठे हैं, तो आपके उपद्रवी, जिनको आपने इकट्ठा कर लिया है, जो आपको मंत्री बनाते हैं, वे चैन से नहीं बैठने देंगे। वे खुजलाएंगे। तो वहां तो खाज के रोगियों का ही समूह है, वहां बहुत मुश्किल है। वही अपनी भी खुजलाते हैं लोग, दूसरों को भी खुजलाते हैं। आप वहां से हट आएं।

वे कहते हैं कि आप बात तो ठीक कहते हैं, और मैं हटना भी चाहता हूं—जब वे नहीं होते, तब वे कहते हैं कि हटना भी चाहता हूं—मगर अभी जरा मुश्किल है, उलझाव है। तो फिर मैं उनसे कहता हूं कि अशांत ही रहो। फिर क्यों शांत होना चाहते हो? दोनों बातें एक साथ नहीं हो पातीं हैं। जिस व्यक्ति को निसर्ग के अनुकूल चलना है, उसे यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि प्रतिकूल क्यों चल रहा है। ○

भगवान श्री के अमृत मार्ग निर्देशन
और सान्निध्य में

• समाधि साधना शिविर •

१० अगस्त से २० अगस्त, ७४ तक

प्रवेश शुल्क	:	१००।- रु०
आवास एवं भोजन शुल्क	:	१२५।- रु०

प्रवचन सुबह ८ से ९-३० तक अंग्रेजी भाषा में

केवल प्रवचन में ही भगवान श्री का अमृत सान्निध्य उपलब्ध होगा

मध्याह्न : टेप्ड हिन्दी प्रवचन, कीर्त्तन ध्यान ।

रात्रि : सूफी दरवेश नृत्य ।

☐ प्रवेश हेतु सम्पर्क :

मा योग लक्ष्मी
द्वारा, श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना–१ (महा०)